भगवान रजनीश की सृजनात्मक युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युक्रांद

फरवरी–मार्च १९७५

मूल्य : २.५० रु.

भगवान श्री के प्रवचन तथा समाधि-साधना शिविर

दिनांक १ मई से १० मई जस्ट लाइक दैट (सूफी कहानियां; अंग्रेजी)

,, ११ मई से २० मई कहै कबीर दीबाना (समाधि साधना शिविर, हिन्दी)

,, २१ मई से ३० मई गीता-दर्शन १७ वां अध्याय (हिन्दी)

,, १ जून से १० जून मेरा मुझमें कुछ नहीं (कबीर-वाणी, हिन्दी)

,, ११ जून से २० जून दि थ्री ट्रेजर्स (ताओ, समाधि-साधना शिविर अंगरेजी)

,, २१ जून से ३० जून दि थ्री ट्रेजर्स (ताओ)

●★●

नियम संख्या ८ के अनुसार 'युक्रांद' के स्वत्वाधिकार सम्बन्धी व अन्य विवरण

१.	प्रकाशन का स्थान	: ७९०, राइट टाउन, जबलपुर
२.	प्रकाशन आवृत	: मासिक
३.	मुद्रक	: अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर
४.	प्रकाशक	: अरविंद कुमार
५.	संपादक	: अरविंद कुमार
६.	मुद्रक, प्रकाशक व संपादक की राष्ट्रीयता	: भारतीय
७.	स्वत्वाधिकारी	: अरविन्द कुमार

मैं अरविन्द कुमार प्रमाणित करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

जबलपुर, हस्ताक्षर :
३० मार्च, ७५. अरविंद कुमार

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगचक्र

वर्ष – ६ अंक – ८-९

मूल्य एक प्रति २-५० रु.
" वार्षिक : १५-०० रु.

फर.-मार्च १९७५

मानसेवी संपादक मंडल :

- अरविन्दकुमार
- डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
- आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

फर.-मार्च

संयुक्तांक

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ४ :	अखंड प्यास	बोध कथाओं से
: ५ :	स्वीकार की आग	स्वामी कृष्ण गौतम
: ३१ :	सख्त व्यवस्था : एक अन्तदर्शन	स्वामी ईश्वर समर्पण
: ३९ :	'नहीं राम बिन ठांव' (६वाँ प्रवचन)	स्वामी नरेंद्र बोधि सत्व
: ६१ :	आधुनिक युग के वैज्ञानिक ऋषि : भगवान श्री रजनीश	अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'
: ६५ :	भगवान श्री और मैं	गोपाल कृष्ण अग्रवाल
: ७१ :	समाधि साधना शिविर संबोधि दिवस समारोह	स्वामी योग प्रताप भारती

गीत : काव्य

बोधि दिवस पर भाव अंजलि :३: ★ अच्छा ही रहा—स्वामी अगेह भारती : २८ : ★ ये होश की शराब—स्वामी योग प्रीतम : २९ : ★ भक्ति मंदाकिनी—स्वामी योगप्रीतम : ३० : ★ ईश्वर दर्शन—योगी गोपाल किरण : ३८ : ★ आगे बढ़ो—अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र' : ६० : ★ प्रभु घर आओ रे—साधु प्रेमदास : ६४ : ★ रजनीश—अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र' : ६९ : ★ संग से असंग में-असंग से तरंग में—माधव जैन 'अन्तस' : ७० : ★ हे प्यारे प्यासे आ जाओ—मा योग सुवर्णा : ७९ :

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट टाउन, जबलपुर फोन 2957P.P.

२१ मार्च ७५, बोधि-दिवस के अवसर पर :

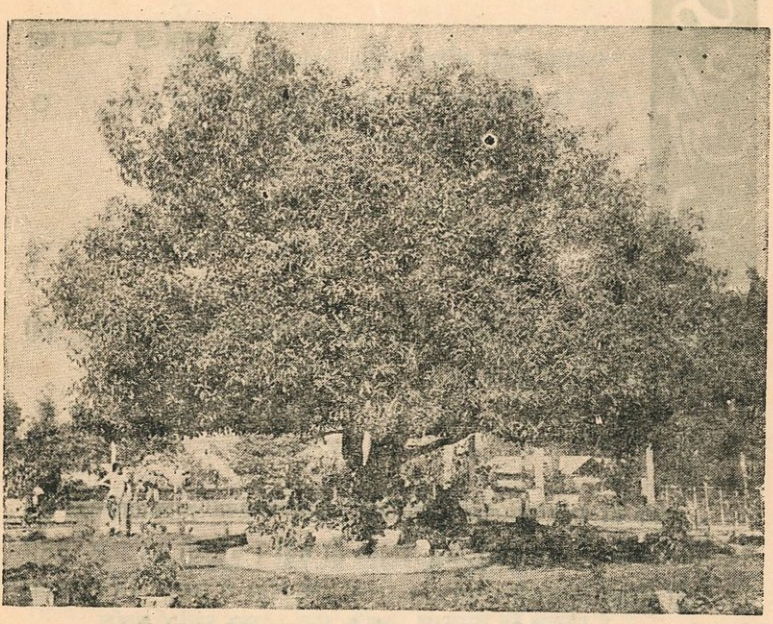

हे मौलिश्री,
परम सखे—
ज्ञान के अथाह सागर की
ज्ञान-रश्मियों को
आत्म-ज्ञान का स्वर दिया है तूने,
उस भगवत् सत्ता के अस्तित्व को
चिरकाल तक एक बार फिर—
अवनी पर गुँजा दिया है तूने ।

• अरविन्दकुमार

बोध कथाओं से

अखंड प्यास

१

सत्य की साधना सतत है। श्वास श्वास जिसकी साधना बन जाती है, वही उसे पाने का अधिकारी होता है।

●

सत्य की आकांक्षा अन्य आकांक्षाओं के साथ एक आकांक्षा नहीं है। अंश मन से जो उसे चाहता है, वह चाहता ही नहीं। उसे तो पूरे और समग्र मन से ही चाहना होता है। मन जब अपनी अखण्डता में उसके लिए प्यासा होता है, तब वह प्यास ही सत्य तक पहुंचने का पथ बन जाती है।

स्मरण रहे कि सत्य के लिए प्रज्वलित प्यास ही पथ है।

प्राण जब उस अनन्त प्यास से भरे होते हैं, और हृदय जब अज्ञात को खोजने के लिए ही धड़कता है, तभी प्रार्थना प्रारम्भ होती है। श्वासें जब उसके लिए ही आती जाती हैं, तभी उस मौन अभीप्सा मे ही परमात्मा की ओर पहले चरण रखे जाते हैं।

प्रेम—प्यासा प्रेम ही उसे पाने की पात्रता और अधिकार है।

●

सत्य को पाने के लिए क्या अपने प्राण दे सकते हो? जो इतना मूल्य चुकाने को राजी होते हैं, सत्य उन्हें निर्मूल्य मिल जाता है।

स्वीकार की आग

▽

भगवान श्री द्वारा 'सहज समाधि भली' प्रवचन-माला के अंतर्गत दिनांक २२ जुलाई ७४ को पूना में दिया गया दूसरा प्रवचन ।

△

□ संकलन : स्वामी कृष्ण गौतम
○ संपादन : स्वामी योग चिन्मय

जोशू ने नानसेन से पूछा : मार्ग कौन है ?

नानसेन ने कहा : दैनन्दिन जीवन ही मार्ग है।

जोशू ने फिर पूछा : क्या उसका अध्ययन हो सकता है ?

नानसेन ने कहा : यदि अध्ययन करने की कोशिश की, तो तुम उससे दूर भटक जाओगे।

जोशू ने फिर पूछा : यदि मैं अध्ययन नहीं करूं, तो कैसे जानूंगा कि यह मार्ग है ?

नानसेन ने उत्तर में कहा : मार्ग दृश्य जगत का हिस्सा नहीं है; न ही वह अदृश्य जगत का हिस्सा है। पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ। अगर तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहते हो तो आकाश की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में, पूरी स्वतन्त्रता में छोड़ दो। और न उसे शुभ कहो और न अशुभ।

कहते हैं कि ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

यह छोटी-सी परिचर्चा—जोशू और नानसेन के बीच—जीवन को बदलने वाली हो सकती है। तुम्हारे जीवन में भी एक अंगार इस परिचर्चा से पड़ सकता है। तुम भी भभक कर जल सकते हो।

अति कठिनाई होती है समझने में, कि इतनी-सी परिचर्चा से सुनने वाला ज्ञान को कैसे उपलब्ध हो गया होगा! ये दो बातें हैं—गुरु और शिष्य के बीच। इन छोटी-सी दो बातों से शिष्य अचानक बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया! ऐसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है। कभी होगा। ठीक क्षणों की बात है। गुरु और शिष्य के ठीक मिल जाने की बात है। जैसे अंगारा बारूद से मिल जाय और विस्फोट हो जाय।

बारूद तैयार ही है—विस्फोट के लिए; तुम तैयार ही हो—बुद्धत्व के लिए। सिर्फ अंगारा और तुम्हारे बीच में थोड़ी-सी बाधा है, कोई दीवार है, कोई पर्दा है। अंगार पड़ता भी है तुम्हारे ऊपर, तो तुम्हारी बारूद से मिल नहीं पाता। उस दीवार को ही ज्ञानियों ने विचार कहा है।

तुम गुरु को दूर रखते हो—अपने से, क्योंकि तुम्हारे और गुरु के बीच विचार हैं। तुम सोचते हो; क्या कहा गया है, इसको तुम विचारते हो। उसी विचार में तुम चूक जाते हो। काश, तुम बिना विचारे सुन सको; बिना विचारे देख सको, तो दीवाल हट जाय। तुम भी विस्फोट को उपलब्ध हो सकते हो।

जैसे हर बारूद विस्फोट हो सकती है, वैसे ही हर व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकता है।

कुछ बुनियादी बातें ख्याल में ले लो, फिर हम इस छोटी-सी कथा में प्रवेश करें।

पहली बुनियादी बात कि तुम जैसे हो परिपूर्ण हो। तुममें कुछ भी किया जाना नहीं है। किये जाने का ख्याल ही तुम्हें मुसीबत में डाले हुए है। यह ख्याल ही कि—खुद को सुधारना है, बदलना है, विकसित होना है, सीढ़ियां चढ़नी हैं, सोपान पार करने हैं, कहीं पहुंचना है—यह ख्याल ही तुम्हें आत्म-निन्दा से भरे हुए है। और जब तक तुम सोचोगे कि तुम्हें कहीं पहुंचना है, कुछ होना है, बदलना है, तब तक तुम मुसीबत में रहोगे।

तुम्हारी मुसीबत ऐसी ही है जैसे कोई आदमी अपने ही जूते के बन्ध से खुद को उठाने की कोशिश करे। तुम खुद को कैसे बदलोगे? कौन बदलेगा? किसको बदलोगे?

तुम ही बदलोगे, तो बदलाहट होगी कैसे? तुम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो।

तुम्हारी परेशानी वैसी है जैसे कि—कभी तुमने किसी कुत्ते को दोपहर किसी छाया में विश्राम करते देखा हो, तो अनेक बार वह छलांग लगा-लगा कर अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश करता है। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है, क्योंकि जैसे ही वह छलांग लगाता है, पूंछ भी छलांग लगा जाती है पूंछ उसकी ही है। कुत्ते को जोश भी आता है, गुस्सा भी आता है। क्योंकि छोटी सी पूंछ इतना चकमा देती है। कुत्ता और जोर से झपटता है, पूंछ उतने ही जोर से छलांग लगा जाती है।

जैसा कुत्ता मुसीबत में पड़ा है—छाया में विश्राम नहीं कर पा रहा है अपनी ही पूंछ को पकड़ने की चेष्टा में व्यर्थ परेशान हो रहा है, ऐसी ही दशा तुम्हारी है। तुम जिसे पकड़ना चाह रहे हो, वह तुम्हारी पूंछ है। और तुम जितने जोर से छलांग लगा कर पकड़ने की कोशिश करते हो, उतनी ही जोर से वह तुम्हारे हाथ से निकल जाती है।

इससे तुम बड़े पीड़ित होते हो। इससे तुम सोचते हो कि शायद छलांग छोटी है, ताकत कम है, समय नहीं आया, भाग्य साथ नहीं देता, कर्मों की बाधा है। कुछ भी नहीं है। सिर्फ इतनी ही बात जाननी है कि पूंछ तुम्हारी है और पकड़ने की कोई जरूरत नहीं है, वह पकड़ी ही हुई है। तुम कहीं भी जाओ, वह तुम्हारे पीछे ही होगी।

सिद्धत्व, बुद्धत्व पकड़ा ही हुआ है, तुम्हें वहां पहुंचना नहीं है, तुम सदा से वहां रह रहे हो। इसलिए यह घटना घट सकती है कि एक क्षण में एक शब्द की चोट किसी को जगा दे।

अगर अनन्त जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हों, तो यह कैसे हो सकता है? अगर पापों ने दीवार बनाई हो, तो यह कैसे हो सकता है? और अगर मंजिल बहुत दूर हो और पाने में बड़ा श्रम करना पड़ता हो, तो एक क्षण में निर्वाण कैसे घटित होगा?

एक क्षण में घट जाता है। बस, तुम्हारे शांत, निर्विचार होने की बात है। दीवार न होगी, घट जायेगा। लेकिन हमारा पूरा जीवन बड़ी उलटी कोशिश में लगा है।

एक दिन सुबह-सुबह मैं घूमने निकला। देखा एक वृक्ष के नीचे एक बंगले के बाहर एकान्त रास्ते पर इमली का वृक्ष है, एक बच्चा आंख

बंद किये इमली खा रहा है। उससे मैंने पूछा कि आंख क्यों बन्द किए हो। उसने आंख बन्द किए ही उत्तर दिया कि मां ने कहा है कि अगर मैंने इमली का मुंह देखा, तो टांग तोड़ देगी।

वह आंख बन्द किए हुए है, ताकि इमली का मुंह न देखना पड़े। करीब-करीब जिसको हम साधक कहते हैं, उसकी दशा ऐसी ही है। भयभीत है कि अगर वासनाओं में गया तो नर्क, तो दुख। लोलुप है कि अगर वासनाओं में न गया, तो सुख कहां तो बीच का रास्ता निकाल रहा है। आंख बन्द किए इमली चूस रहा है। टांग भी न टूटे, इमली भी न छूटे। पर ऐसी प्रवंचना की दशा में तुम कितना ही समय बिता दो, जागरण घटित न होगा।

ठीक से समझने की बात केवल इतनी ही है कि अपने को धोखा देने का कोई उपाय नहीं है और न अपने को बदलने का कोई उपाय है। बड़ा कठिन है, क्योंकि जब तक लगता है —'अपने को बदल सकते हैं', तो आशा बंधती है। और ऐसा लगता है आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों बदल लेंगे। इस बदलने की आशा से तुम बदलते नहीं हो, सिर्फ जो घटना अभी घट सकती थी, उसे तुम टाल देते हो।

मन उदास होगा, अगर पता चले कि बदलाहट हो ही नहीं सकती। लेकिन तुम उदासी से बेचैन मत होओ क्योंकि आशा तुम्हें कहीं भी नहीं ले गई, तो उदासी से घबड़ाते क्यों हो? बदल-बदल कर तुम बदल तो नहीं पाये...अगर 'बदलने से बदलाहट नहीं होती है, इस तथ्य का उद्घाटन होता है और आंख खोल कर यह दिखाई पड़ता है, तो तुम इतने ज्यादा चिन्तित क्यों होते हो ?

लौट कर देखें—बचपन से इस जन्म का तो तुम्हें पता है—तुम जरा भी बदले हो? एक कण भी बदला है? तुम वही के वही हो। तुमने रंग रोगन थोड़ा बदला होगा, कपड़े बदल लिये होंगे, लेकिन अगर तुम थोड़ी सी भी समझपूर्वक देखो तो तुम पाओगे कि तुम वही के वही हो। जरा भी कुछ बदला नहीं है। लेकिन फिर भी मन में आशा रखते हो कि कभी बदल जायेंगे।

कौन बदलेगा ? तुम्हीं बदलोगे, कैसे तुम बदलोगे? तुम्हारी कोशिश व्यर्थ है... इस बात की प्रतीति हो जाय, तो एक दूसरी प्रतीति और कर लेनी जरूरी है कि धोखा देने में भी कोई सार नहीं है क्योंकि किसको धोखा दोगे ? आंखें बंद करके इमली खाओगे, इससे क्या फर्क पड़ेगा ? धोखा भी नहीं दिया जा सकता और

बहलाहट भी नहीं होती। तब क्या बच रहता है? जो बच रहता है, वही झेन का सार है; वही सहज योग का सार है—जो बच रहता है।

क्या बच रहता है? बच रहता है—स्वीकार। जो दैनन्दिन जीवन है—उसका स्वीकार। 'तुम जैसे हो, वैसे हो', इस तथ्य की सहज स्वीकृति और इस तथ्य के लिए कुछ भी न करना। अगर तुम आलसी हो, तो आलसी हो। अगर तुम क्रोधी हो, तो क्रोधी हो। अगर तुम बेईमान हो, तो बेईमान हो। अगर बेईमान ही बेईमानी को बदलने की कोशिश करेगा, तो बेईमानी करेगा—इसमें भी। चोर अगर चोरी से बचने की कोशिश करेगा, तो उससे बचने में भी चोरी कर जायेगा। झूठा आदमी है—अगर सच बोलने की कोशिश भी करेगा तो उसके सच बोलने में भी झूठ होगा, क्योंकि झूठ उसका स्वभाव है, उसकी आदत है। उसमें से सच निकलेगा, तो झूठ हो जायेगा।

स्वयं को स्वीकार जो कर ले, उसके अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं रह जाता। क्योंकि जैसा तुम अपने को पाओगे, उसमें अहंकार करने जैसी गुंजाइस नहीं है। किस बात का गौरव करना है क्या है, जिसका गौरव करना है? और जो व्यक्ति स्वयं को स्वीकार कर लेगा—तो न अहंकार उठेगा, न धोखा देना पैदा होगा, न बदलाहट की चेष्टा होगी; फिर क्या होगा? फिर तुम ही बच रहते हो। और तुम जैसे हो, वैसे ही बच रहते हो। यही मार्ग है।

सहज-योग का अर्थ यह है कि कुछ भी करने जैसा नहीं है, सिर्फ स्वीकार की दशा को उपलब्ध हो जायें; क्रांति घटित होगी। वह तुम्हारे करने से घटित नहीं होगी। वह तुम्हारे इस महान स्वीकार से फलित होगी। क्योंकि जैसे ही तुमने स्वीकार किया, विचार समाप्त हुआ।

तथ्य क्रांति ले आते हैं। सत्य क्रांति है। जैसे ही सत्य दिखाई पड़ता है, क्रांति हो जाती है।

बेईमान आदमी को बेईमानी बदलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन बेईमान आदमी अपनी बेईमानी को पूरी तरह स्वीकार कर ले, इस स्वीकृति में इतनी अग्नि पैदा होती है कि बेईमानी राख हो जाती है, जल जाती है। लेकिन बेईमानी भी धोखा देता है, वह कहता है: कल ईमानदार हो जायेंगे। और आज अगर बेईमानी करनी पड़ी, तो परिस्थिति के कारण करनी पड़ी। करना मैं चाहता नहीं था। मजबूरी थी। कोई आदमी मैं बुरा नहीं हूं। आदमी तो भला हूं। और भले होने

की पूरी कोशिश कर रहा हूं। कल भी कर रहा था, कल भी करूंगा। आज छोटी-सी बेईमानी करनी पड़ी—परिस्थितिवश। बच्चे हैं, पत्नी है, घर-द्वार है—इसको चलाना है—संसार है।

यह आदमी रोज अपने को धोखा देता रहेगा। क्योंकि यह अपनी बेईमानी को भी देख नहीं रहा है, उसे छुपा रहा है, ढांक रहा है। बदलाहट कैसे होगी?

ढांकने से कहीं कोई बदलाहट हुई है! घाव ढंक लेने से कहीं कोई बीमारियों से छुटकारा हुआ है! यह आदमी अगर अपनी बेईमानी को पूरी तरह देखे...और देखेगा तभी, जब समझ ले कि न तो बदल सकता हूं, न आंख बंद करके धोखा दे सकता हूं; यह मैं हूं और इसी के साथ मुझे रहना है, इससे हटने का कोई उपाय नहीं है, यह मेरी छाया है।

क्या होगा? ऐसे क्षण में क्या होगा जब तुम बदल भी नहीं सकते, धोखा भी नहीं दे सकते और तुम्हें अपना पूरा रोग, पूरा मवाद, पूरा घाव दिखाई पड़ता है? क्या होगा? तुम्हारे जीवन में वैसी छलांग लग जायेगी, जैसे तुम्हें अचानक पता लगे कि घर में आग लगी है, चारों तरफ लपटें हैं, तब न तो तुम पूछते हो कि कहां से बाहर जाऊं, न तुम सलाह मांगते हो, न तुम कोई नक्शा खोजते हो, न तुम सोचते हो कि कल निकलेंगे, इतनी जल्दी निकलना कैसे हो सकता है। तुम बस, छलांग लगा जाते हो। तुम सोचते भी नहीं कि खिड़की कहां, द्वार कहां, मार्ग कहां? तुम बस, छलांग लगा जाते हो। क्योंकि जब घर में आग लगी हो, तो सोचने की सुविधा नहीं है। तुम रास्ते से गुजरते हो और एक सर्प तुम्हें दिखाई पड़ता है—फन उठाये, उस वक्त तुम क्या करते हो? तुम सोचते हो? तुम सर्प से कहते हो कि रुको। एक दो क्षण मुझे विचार का मौका दो, ताकि मैं कुछ उपाय कर सकूं? कैसे निकलूं इस घेरे से? नहीं, तुम बस छलांग लगा जाते हो। सोच-विचार बाद में आता है, छलांग पहले आती है। अगर ठीक से समझो तो 'सांप भी है', यह तुम्हें बाद में पता चलता है—जब तुम छलांग लगा जाते हो। छलांग पहले घट जाती है।

जब जीवन इतने खतरे में होता है, तो क्रांति स्वयं घटित होती है, उसे करना नहीं पड़ता।

दैनन्दिन जीवन अगर पूरी तरह स्वीकार हो, तो क्रांति घटित होगी, तुम्हें 'करना' न होगा। तुम्हें साधक न बनना पड़ेगा, तुम सिद्ध हो

जाओगे। सहज-योग का सार यही है।

अब हम इस छोटी-सी परिचर्चा को लें। इसका एक-एक शब्द महत्व-पूर्ण है।

जोशू ने नानसेन से पूछा : मार्ग कौन है? कहां है मार्ग? कहां से चलूं कि पहुंच जाऊं? नानसेन ने कहा, 'दैनन्दिन जीवन ही मार्ग है।'

यह रोज की जिन्दगी ही मार्ग है। तुम जैसे हो, तुम जहां हो, तुम जो कर रहे हो—वही मार्ग है। उससे अलग तुमने मार्ग सोचा कि तुम धोखे में पड़ोगे। क्योंकि उससे अलग कोई मार्ग है ही नहीं। तुम्हारी दूकान, तुम्हारा मकान, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे, तुम्हारा काम-धंधा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी वासना, बस, वहीं मार्ग है। तुमने अगर तरकीब निकाली और कोई सुन्दर मार्ग सपने का बनाया तो वह झूठा होगा। उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध ही न होगा।

हम सबने ऐसे मार्ग बना लिए हैं, जिनसे हमारा कोई भी संबंध नहीं, जिन पर हम चल भी नहीं सकते, क्योंकि हम चलेंगे वहां, जहां हम हैं। हमने मार्ग बनाये हैं—लोकोत्तर। लोक में जीते हैं—लोकोत्तर मार्ग है। जीते साधारण में हैं, असाधारण मार्ग हैं। जीते पृथ्वी पर हैं और हमारे सभी मार्ग स्वर्ग में है। तुम्हारे और तुम्हारे मार्ग के बीच कोई सेतु नहीं है। इसलिए मार्ग अपनी जगह, तुम अपनी जगह, जिन्दगी चलती जाती है; कोई क्रांति घटित नहीं होती।

नानसेन ने कहा, 'दैनन्दिन जीवन ही मार्ग है।'

जोशू ने फिर पूछा, 'क्या उस मार्ग का अध्ययन हो सकता है?'

मन बड़ा कुशल है। नानसेन का उत्तर बिलकुल साफ है, लेकिन फिर भी प्रश्न निर्मित होता है। दैनन्दिन जीवन ही अगर मार्ग है, तो अध्ययन की जरूरत क्या है? अध्ययन तो उसका करना होता है, जिससे हम अपरिचित हैं। अध्ययन उसका करना होता है, जिसे हम नहीं जानते। अगर करुणा को समझना है, तो अध्ययन करना पड़ेगा; क्रोध का अध्ययन करने की कोई जरूरत है? क्रोध तो है, तुम उसे उघाड़ कर देख ले सकते हो, रोज-रोज आता है; तुम उसे ढांक-ढांक छिपाते हो। तुम क्रोध के अध्ययन से बचते हो। जीवन के अध्ययन की क्या जरूरत है?

अगर ब्रम्हचर्य समझना हो, तो अध्ययन की जरूरत है। लेकिन काम-वासना को समझने के लिए अध्ययन

की क्या जरूरत है? अन्धा भी समझ लेगा। क्योंकि काम-वासना तो जल रही है, उसकी लपटें तो चारों तरफ है।

जोशू ने फिर पूछा, "क्या उस मार्ग का अध्ययन हो सकता है?" "मन तरकीब खोज रहा है। क्योंकि अध्ययन अगर करने की सुविधा मिल जाय, तो क्रांति से बचने का उपाय हो जाय। क्योंकि हम कहते हैं: पहले अध्ययन करेंगे, समझेंगे फिर आचरण करेंगे; पहले स्वाध्याय होगा, फिर आचरण होगा। अभी इतने जल्दी आचरण तो नहीं हो सकता।

करुणा को समझने की जरूरत ही नहीं, अध्ययन की जरूरत ही नहीं, करुणा की तुम बात ही छोड़ दो। तुम क्रोध को ही ठीक से जान लो; वह मौजूद है, अध्ययन क्या करना है? उसे उघड़ जाने दो। अगर वह पूरा उघड़ जाय, तो करुणा फलित होगी।

यह गहरी-से-गहरी कुंजियों में से एक है।

जैसे पानी गरम हो जाय, तो भाप प्रकट होगी, वैसे ही अगर क्रोध का साक्षात्कार हो जाय, तो करुणा प्रकट होगी, करुणा क्रोध के विपरीत साधी गई कोई अवस्था नहीं है। क्रोध को जिसने उसकी पूरी विषाक्त दशा में जान लिया, वह छलांग लगा कर बाहर हो जाता है। उसकी छलांग उसे करुणा में ले जाती है।

क्रोध के भीतर बैठे-बैठे करुणा को जो साध रहा है, वह धोखा दे रहा है। काम-वासना में दबा हुआ जो ब्रम्हचर्य के विचार कर रहा है, वह धोखा दे रहा है। और इस धोखे के कारण काम-वासना मिटेगी नहीं, बढ़ेगी। इसलिए ब्रम्हचारी की काम-वासना और भी बढ़ जाती है, घटती नहीं है।

उन लोगों को देखो, जो कि क्रोध पर नियंत्रण कर रहे हैं, उनके क्रोध का कोई मुकाबला नहीं है। उनका क्रोध जलती हुई आग है। तुम्हारा क्रोध कुनकुना है; कुछ भी नहीं है। उनका क्रोध भभकता हुआ है। ऐसे क्रोधियों में से ही दुर्वासा जैसे ऋषि पैदा हुए थे। भभकता हुआ क्रोध है।

ऋषि-मुनियों की वासना का क्या हिसाब है! जब भी ध्यान करने बैठते हैं, अप्सराएं चारों तरफ नाचने लगती हैं। तुमने ब्रम्हचर्य का सोच-विचार किया और काम-वासना को छिपाया तो यह होगा।

नानसेन ने कहा, "यदि अध्ययन करने की कोशिश की, तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।"

अध्ययन के लिये दूरी चाहिए। देखने के लिए दूरी नहीं चाहिए। समझ तो तभी फलित होती है, जब दूरी बिलकुल नहीं होती और विचार तभी चलता है, जब दूरी काफी होती है।

जैसे किसी व्यक्ति को प्रेम का अध्ययन करना हो, तो उसे प्रेम में नहीं पड़ना चाहिए; क्योंकि जो प्रेम में पड़ेगा, वह प्रेम का अध्ययन कैसे करेगा! वह तो इतना उत्तप्त हो जायेगा प्रेम से कि उसका अध्ययन निष्पक्ष नहीं हो सकता। अध्ययन प्रेम का करना हो, तो प्रेम में भूल कर नहीं पड़ना चाहिए। पुस्तकालयों में बैठ कर, प्रयोगशालाओं में बैठ कर अध्ययन करना चाहिए।

अगर प्रेम में उतर गये, तो प्रेम की समझ तो आ जायेगी, लेकिन अध्ययन नहीं हो सकेगा। अध्ययन के लिये दूरी चाहिए, तटस्थता चाहिए और फासला चाहिए। प्रेम के लिए दूरी मिटनी चाहिए, सब फासले गिरने चाहिए। तब प्रेम की समझ का तो उदय होगा, लेकिन उस समझ को हम अध्ययन नहीं कह सकते।

जोशू पूछ रहा है कि क्या अध्ययन हो सकता है उस मार्ग का? मन कह रहा है कि अगर अध्ययन हो सकता है, तो उसको पोस्टपोन किया जा सकता है। तो फिर कुछ दिन अध्ययन करेंगे। और जिंदगी जटिल है, एक जन्म में भी अध्ययन पूरा न होगा। अनेक जन्म लग सकते हैं, फिर समझेंगे, सोचेंगे, विचारेंगे, फिर छलांग लगा लेंगे।

नानसेन ने कहा, 'अध्ययन करने की कोशिश की तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।' अगर दूर भटकना हो, तो अध्ययन करना। इसलिए विचारक सत्य से जितने दूर निकल जाते हैं, उतने अज्ञानी भी दूर नहीं होते। अज्ञानी के भी हाथ के पास में सत्य होता है; जब चाहे नजर फेर ले और देख ले। लेकिन विचारक से सत्य बहुत दूर हो जाता है। जितना बड़ा विचारक, सत्य उतना ही दूर हो जाता है।

जिनको हम महान दार्शनिक कहते हैं, उनसे तो सत्य का कोई संबंध ही नहीं रह जाता। वे शब्दों में जीने लगते हैं, सिद्धान्तों में जीने लगते हैं, शास्त्रों में जीने लगते हैं।

सत्य से शास्त्र, शब्द का क्या वास्ता?

नानसेन ने कहा, 'अध्ययन करने की कोशिश की तो तुम उससे बहुत दूर भटक जाओगे।' तुमने कभी ख्याल किया है कि जब तुम विचार करते हो, तभी तुम जीवन से भटक जाते हो।

गुलाब का फूल खिला है, तुम उसके पास बैठे हो। तुमने सोचा और तुम दूर गये। तुमने कहा कि 'फूल सुन्दर है' और तुम दूर गये। तुमने कहा, 'कैसी सुगंध, कैसा प्यारा फूल' और तुम दूर गये। तुमने सोचा कि 'क्या नाम है इस फूल का' और तुम दूर गये। तुम्हें कविताएं याद आ जायेंगी, जो फूल के सम्बन्ध में तुमने पढ़ी हैं, लेकिन ये फूल—इससे तुम दूर हो जाओगे।

अगर फूल के पास होना है, तो एक ही उपाय है कि तुम्हारे भीतर विचार पैदा न हो। तुम देखो तो फूल को, लेकिन सोचो मत। तुम सुनो तो फूल को, लेकिन सोचो मत। तुम सूंघो तो फूल को, लेकिन सोचो मत। तब तुम्हारा मस्तिष्क बाधा न बनेगा और तुम्हारे हृदय के द्वार खुले होंगे। उसी खुले द्वार से फूल तुमसे मिलेगा, तुम फूल से मिलोगे।

जब भी तुम सोचते हो, तभी तुम दूर निकल जाते हो। सोचना एक यात्रा है—दूर जाने की। इसलिए ज्ञानियों का इतना जोर है—ध्यान पर। ध्यान का अर्थ है : न सोचना। ध्यान सोचने से विपरीत है। ध्यान सोचने का दुश्मन है।

लेकिन तुम होशियार हो। तुम पूछोगे, ध्यान के सम्बन्ध में भी अध्ययन तो करना ही पड़ेगा। ध्यान के सम्बन्ध में भी सोचेंगे तो ही; नहीं तो ध्यान को जानेंगे कैसे? यही जोशू कह रहा है। वह कह रहा है : अध्ययन तो कर सकते हैं?

जोशू ने फिर भी पूछा, यदि मैं अध्ययन न करूं, तो कैसे जानूंगा कि यही मार्ग है।' विचार की बड़ी कठिनाइयां हैं। क्योंकि विचार अंधे की तरह टटोलता है।

एक अन्धा आदमी है, वह लकड़ी से रास्ता खोजता है, टटोलता है, देखता है। दीवाल है, तो समझ लेता है; दरवाजा है, तो समझ लेता है। अन्धे आदमी की आंख का इलाज करो, तो वह पूछेगा कि इलाज के बाद फिर मेरी लकड़ी छोड़ दूंगा या रखूंगा? तो चिकित्सक उससे कहेगा कि फिर लकड़ी की कोई जरूरत न रहेगी और अगर लकड़ी फिर भी लेकर तुम टटोलते रहे, तो उसका मतलब होगा कि तुम अभी भी अन्धे हो। अन्धा पूछेगा, लेकिन फिर मैं जानूंगा कैसे कि दरवाजा कहां है और दीवाल कहां है? क्योंकि अब तक उसने लकड़ी के सहारे ही टटोल कर जाना है। उसे पता ही नहीं है कि आंख का एक काम देखना भी होता है, जिसमें लकड़ी की कोई जरूरत नहीं।

जोशू ने पूछा : यदि अध्ययन न करूं, अगर सोचूं-विचारूं न, अगर शास्त्रों का ज्ञान न हो, तो जानूंगा कैसे कि यही मार्ग है ? कुमार्ग में पड़ जाऊं तो ? गलत मार्ग पर चला जाऊं तो ? भटक जाऊं तो ?

हमें भी लगेगा कि उसकी बात ठीक है, गलत मार्ग भी तो हो सकता है। लेकिन सहज-योग कहता है कि गलत के होने का सिर्फ एक ही उपाय है और वह है कि तुमने सोचा। बाकी कोई उपाय गलत होने का नहीं है। अगर तुमने नहीं सोचा, तो तुम सही हो। तुम जहां भी जाओगे, सही ही जाओगे। अगर तुमने सोचा, तो तुम जहां भी जाओगे गलत ही जाओगे।

विचार गलत मार्ग है और ध्यान सही मार्ग है। विचार से तय नहीं होता कि क्या सही है, विचार तो जहां होता है, वहीं गलत हो जाता है। विचार ही गलत हैं।

बड़ी मुसीबत है, क्योंकि हम तो विचार से तय कर रहे हैं कि क्या सही और क्या गलत है। विचार जो कि गलत की प्रक्रिया है, जिससे हर चीज गलत होती है, हम उसी से सही को खोजने की कोशिश कर रहे हैं।

हमारी हालत उस सुनार जैसी है, जो अपने सोना कसने के पत्थर को लेकर बगीचे में आ गया है और फूलों को कस-कस कर देख रहा है कि कौन-सा फूल सही है और कौन-सा गलत है। और पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर पत्थर पर तुमने फूल कसे, तो सभी फूल गलत होंगे। इसका कारण यह नहीं है कि सभी फूल गलत हैं, तुम पत्थर ही गलत ले आये हो। पत्थर के लाने में ही गलती हो गई है। पत्थर पर सोना कसा जाता होगा, फूल नहीं कसे जाते हैं। पत्थर पर घिस के कहीं फूलों का पता चलेगा—कौन सही कौन झूठा ? कौन असली है कौन नकली ?

विचार से सही और गलत का कोई सम्बन्ध नहीं। अगर विचार का किसी चीज से सम्बन्ध है, तो क्या है ? विचार का सम्बन्ध है—जहां बहुत-सी गलतियां हैं, उसमें सबसे कम गलत को चुनना—दी लीस्ट—वह जो सबसे कम गलत है, सबसे कम बुरा है। सबसे कम बुराई को चुनना विचार की प्रक्रिया है। लेकिन सबसे कम बुराई भी बुराई है।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुमने एक ठिगने शैतान को चुना है कि एक लम्बे शैतान को चुना है। शैतान की मात्रा से उसके गुण में कोई फर्क नहीं पड़ता। दो पैसे की

चोरी भी उतनी ही बड़ी होती है, जितनी दो करोड़ की। चोरी—चोरी है। छोटी और बड़ी चोरियां नहीं होतीं। छोटी बुराई और बड़ी बुराई नहीं होती।

मैंने सुना है कि एक आदमी सेना में भर्ती होने गया। उससे पूछा गया कि तुम शराब तो नहीं पीते हो। उसने कहा : नहीं। चोरी की आदत तो नहीं है ? उसने कहा : नहीं। सिगरेट धूम्रपान ? उसने कहा : नहीं। स्त्रियों के पीछे तो नहीं भटकते हो ? उसने कहा : बिलकुल नहीं। आखिर पूछने वाला भी थोड़ा चौंका। उसने कहा कि कोई एकाध तो बुराई होगी ? सैनिक ने कहा : सिर्फ एक ही बुराई है कि मैं झूठ बोलता हूं। मगर एक बुराई काफी है। वह जो सब उसने कहा था, सब व्यर्थ हो गया।

बुराई छोटी-बड़ी नहीं होती और ध्यान रहे, बुराई एक दो और तीन भी नहीं होती। एक बुराई काफी है। सब बुराइयां उसके पीछे आ जाती हैं। एक से दरवाजा खुल गया कि पूरी भीड़ आ जाती है।

विचार—कम-से-कम बुराई क्या है, इसको चुनता है। लेकिन वह भी बुराई है।

विचार से कभी पता नहीं चलता कि क्या ठीक है और क्या गलत है। बहुत गलतियों में सबसे कम गलत कौन है, इसके लिए विचार तर्क करता है।

नानसेन ने कहा : अध्ययन नहीं, विचारण नहीं। जोशू ने पूछा : फिर जानेंगे कैसे कि ठीक क्या है ? तो नानसेन ने उत्तर दिया : मार्ग दृश्य जगत का हिस्सा नहीं है; न ही वह अदृश्य जगत का हिस्सा है। पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ है। अगर तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहो, तो आकाश की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में छोड़ दो, पूरी स्वतन्त्रता में छोड़ दो। और उसे न शुभ कहो, न अशुभ।

बड़े कीमती सूत्र हैं। 'मार्ग न तो दृश्य जगत का हिस्सा है...।' जिन रास्तों को तुम देखते हो, उन रास्तों में से कोई भी रास्ता आत्मा तक नहीं जाता है। वे सभी रास्ते बाहर ले जाते हैं। उनमें से कोई भी रास्ता भीतर की तरफ नहीं जाता। तुम दुनिया भर के रास्तों पर चलते रहो, तो भी तुम अपने भीतर नहीं पहुंचोगे। रास्ते मात्र—जो दिखाई पड़ते हैं—बाहर ले जाते हैं।

तो विचार कहेगा, तो फिर इससे विपरीत सही होगा। अगर दृश्य रास्ते उस तक नहीं ले जाते,

तो वह अदृश्य का हिस्सा होगा। विचार हमेशा विपरीत में सोचता है। अगर यह सही नहीं है, तो इससे उल्टा सही होगा। अगर हां गलत है तो नहीं सही होगा, अगर 'नहीं' गलत है, तो 'हां' सही होगा, अगर नास्तिक गलत है, तो आस्तिक ठीक होगा, अगर आस्तिक गलत है, तो नास्तिक ठीक होगा। लेकिन ठीक सदा दोनों के पार है। न तो नास्तिक ठीक है, न आस्तिक ठीक है। वे तो एक ही गलती के दो छोर हैं। वे तो एक ही जिद के दो हिस्से हैं। वे एक ही नासमझी के दो पहलू हैं। जो परम धार्मिक है, वह न तो आस्तिक होता, न नास्तिक।

इसलिए बुद्ध और महावीर के संबंध में बड़ा भ्रम है। बहुत लोग समझते हैं कि वे आस्तिक हैं, बहुत लोग समझते हैं कि वे नास्तिक हैं। और बुद्ध और महावीर खुद चुप हैं। जैन समझते हैं कि महावीर से बड़ा आस्तिक कहां खोजोगे! हिन्दू समझते हैं कि महावीर से बड़ा नास्तिक और कौन होगा।

बौद्ध सोचते हैं कि बुद्ध महा-आस्तिक हैं। लेकिन गैर-बौद्ध सोचते हैं, कि इस आदमी ने सब भ्रष्ट कर दिया; यह आदमी महा-नास्तिक है। यह आदमी बड़ा बहुमूल्य था, इसलिए हिन्दुओं ने इसे दसवां अवतार स्वीकार किया। बुद्ध को इनकार करना भी मुश्किल है, आदमी वजनी था। इसको तुम इनकार करोगे, तो तुम्हें खुद लगेगा कि कुछ भूल हो रही है। इतना बड़ा आदमी इस मुल्क में पैदा हुआ, इसे हिन्दू अपने अवतारों में से छोड़ भी नहीं सकते थे। क्योंकि छोड़ने से बुद्ध का कोई भी नुकसान नहीं होगा, वरन् हिन्दुओं की फेहरिस्त कमजोर हो जायेगी। वे जो लिस्ट बनाये हुए हैं—अवतारों की, उसकी ही कीमत गिर जायेगी। बुद्ध का कोई हर्जा नहीं है। लेकिन बुद्ध से ज्यादा जगमगाता आदमी पैदा नहीं हुआ इस जमीन पर, इस मुल्क में। इसको छोड़ना हिन्दुओं के लिए दुखद होता। इस आदमी के साथ बड़ी क्रेडिट जुड़ी है। तो इसको स्वीकार किया दसवां अवतार। लेकिन यह आदमी खतरनाक भी है। क्योंकि इसको साधारण अर्थों में आस्तिक नहीं कह सकते। यह कहता है 'कोई ईश्वर नहीं है।' इसको साधारण अर्थों में आत्मवादी भी नहीं कह सकते। यह कहता है: 'कोई आत्मा नहीं है।' इस आदमी को साधारण अर्थों में आध्यात्मिक तक नहीं कह सकते, क्योंकि यह कहता है न तो कोई मोक्ष है, न कहीं जाना है, कुछ भी नहीं हैं, परम शून्य है।' अब यह आदमी आस्तिक नहीं, आत्मवादी नहीं, लेकिन इसे अवतार मानने

से भी बचा नहीं जा सकता है इसकी कीमत ज्यादा है, इसको छोड़ भी नहीं सकते। हिन्दुओं ने एक कथा गढ़ी कि बुद्ध अवतार हैं।

बड़ी मीठी कथा है हिन्दुओं में कि जब भगवान ने जगत् बनाया तो उसने नर्क भी बनाया, स्वर्ग भी बनाया, फिर भगवान् के नौ अवतार हुए—बुद्ध के पहले और उन्होंने लोगों को धर्म समझाया। और लोग इतने धार्मिक होते गये कि वे सभी स्वर्ग चले गये। नरक में शैतान बैठा है, खाली हाथ। लम्बा समय बीतता जाता है कोई आता नहीं है। शैतान ने भगवान से कहा कि इसका अर्थ क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? मुझे यहां किसलिए बिठा रखा है उस दफ्तर में, जो चलता ही नहीं और जहां कोई कभी आता नहीं। तुम्हारे अवतार सभी को मुक्त किए दे रहे हैं। उनका काम बन्द करो। मुझे यहां किसलिए बिठा रखा है? तो भगवान ने बुद्ध को भेजा, ताकि लोगों को भटकायें और लोग नरक जा सकें और शैतान खाली न बैठा रहे। छोटे-मोटे आदमी से यह भटकाना भी नहीं हो सकता; क्योंकि भगवान ने जिसको चलाया हो रास्ते पर श्री कृष्ण ने जिनको मार्ग दिखाया हो, तो उनसे भी बड़ी हैसियत का आदमी चाहिए जो भटकाये। इसलिए दसवां अवतार बुद्ध का हुआ—लोगों को भटकाने के लिए। हिन्दू-मन ने बड़ी तरकीब से काम लिया, गणित पूरा ठीक बैठाया। इस आदमी को स्वीकार भी नहीं करना है और इस आदमी को इनकार करके नुकसान भी नहीं उठाना है।

लेकिन बुद्ध के साथ तकलीफ क्या है? तकलीफ यही है कि परम धार्मिक व्यक्ति 'हां' और 'ना' में विभाजित नहीं होता। तुम उसे किसी पक्ष में नहीं रख सकते। तुम उसे विपक्ष में भी नहीं रख सकते, क्योंकि वह निष्पक्ष होता है। उसका कोई पक्ष-पात नहीं है।

तो मार्ग न तो दृश्य जगत में है। मन तत्काल कहेगा, दृश्य में नहीं है, तो अदृश्य में होगा। लेकिन नानसेन ने कहा: नहीं, न तो दृश्य में मार्ग है, न अदृश्य में। मार्ग तुममें है।

यह बड़े मजे की बात है। तुम न तो दृश्य हो और न अदृश्य। तुम दोनों के पार हो; क्योंकि तुम्हें देखा भी नहीं जा सकता और तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैंने अपने को कभी देखा नहीं। ये दोनों बातें गलत होंगी। तुम अपने को जानते तो हो, पहचानते भी हो क्योंकि तुम अपने को ही नहीं पहचानोगे तो और क्या पहचानोगे। तुम्हारे होने का तुम्हें

प्रतिपल पता चल रहा है। लेकिन तुम स्पष्ट रूप से यह भी नहीं कह सकते कि मैंने अपने को जान लिया है, क्योंकि जानने के लिए दूरी चाहिए, जानने के लिए दूसरा चाहिए, स्वयं को कोई कैसे जान लेगा।

आत्मज्ञान की बड़ी कठिनाई है। न तो वह ज्ञान जैसा है और न अज्ञान जैसा है। वह दोनों से भिन्न है। वह ज्ञान जैसा साफ है और अज्ञान जैसा रहस्यपूर्ण है। वह प्रकाश जैसा स्पष्ट है और अंधेरे जैसा गहन है। वह दोनों है। इसलिए आत्मज्ञान—न तो दृश्य जगत् का हिस्सा है और न अदृश्य जगत का। दोनों को अतिक्रमण कर जाता है, ट्रांसेन्डेन्टल है, दोनों के पार है।

नानसेन ने कहा, 'मार्ग न तो दृश्य का हिस्सा है और न अदृश्य का। पहचान भ्रम है।' बड़े मजे की बात कह रहा है नानसेन। 'पहचान भ्रम है और गैर-पहचान व्यर्थ है।' अगर तुमने कहा कि मैंने पहचान लिया, तो तुम गलती में हो। क्योंकि पहचानेगा कौन? वहां तुम अकेले हो। दूसरा नहीं है, जो पहचान ले। और अगर तुमने कहा कि मैं अभी तक पहचान नहीं पाया, तो भी तुम गलत हो। अगर तुम कहो कि मैंने जान लिया, तो गलत, अगर तुमने कहा कि मैंने नहीं जाना, तो भी गलत।

पहली बात समझ लें, तो दूसरी मुश्किल हो जाती है। दूसरी मान लें, तो पहली मुश्किल हो जाती है। यह हमारे मन का द्वंद्व है।

अगर कोई कहता है कि मैंने आत्मा को जान लिया, तो नानसेन कहता है कि यह गलत है क्योंकि जानने वाला और जाना जानेवाला एक ही है। दावा कौन करेगा? तो हमारा मन कहता है: तब विपरीत बात सही होगी, उस आदमी को कहना चाहिए कि मैंने उसे अभी तक जाना नहीं है। लेकिन वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो कहे: मैंने उसे अभी तक जाना नहीं—इस कहने में ही जानना घटित होता है। जिसने इतना जान लिया, उसे जानने को और क्या बचा! इसलिए साक्रेटीज कहता है कि जिसने जान लिया कि मैं नहीं जानता, वह ज्ञानी हो गया।

बड़ी उल्टी बात हो गई। कहो हां तो आधा है, कहो ना तो आधा है। और तुम पूरे हो। तुम दोनों हो, तो या तो हां और ना एक साथ कहो या हां और ना को एक साथ इनकार कर दो। लेकिन चुनो मत। आधा-आधा मत करो।

'पहचान भ्रम है और गैर पहचान व्यर्थ।'

'यदि तुम असंदिग्ध होकर सच्चे मार्ग पर पहुंचना चाहते हो, तो आकाश

की तरह अपने को उसकी पूरी उन्मुक्तता में छोड़ दो। अगर तुम सही मार्ग पर पहुंचना चाहते हो, तो तुम सही और गलत का विचार मत करो अन्यथा तुम कभी भी न पहुंचोगे, तुम बैठे ही रहोगे, जहां हो वहीं। अगर तुम सही मार्ग पर पहुंचना चाहते हो, तो तुम आकाश की तरह अपने को उन्मुक्त छोड़ दो। तुम खोजो ही मत, तुम चुनो ही मत। तुम पक्षियों की भांति हो जाओ, जिनका कोई मार्ग ही नहीं होता। आकाश में कोई मार्ग तो नहीं है, कोई बंधे बंधाये रास्ते नहीं हैं। पक्षी उड़ता है, पदचिन्ह भी नहीं छूटते।

'तुम आकाश की भांति मुक्त हो जाओ। अपने को पूरी स्वतन्त्रता में छोड़ दो और इसे न शुभ कहो न अशुभ। क्योंकि जैसे ही स्वतन्त्रता का ख्याल आता है तुम्हारा मन भी तत्काल कहेगा कि कहीं बुराई हो गई फिर? अगर स्वतन्त्र छोड़ दिया।

मैं लोगों से कहता हूं छोड़ दो स्वतन्त्र। तत्क्षण वे पूछते हैं फिर नीति अनीति, फिर शुभ-अशुभ का क्या होगा? अगर चोरी करने का मन हुआ, तो फिर क्या करें? अगर स्वतन्त्र छोड़ा और चोरी करने का मन हुआ, तो फिर क्या करें? नियन्त्रण तो रखना ही पड़ेगा, नहीं तो चोरी हो जायेगी। नियन्त्रण तो रखना ही पड़ेगा, नहीं तो गलत में गति हो जायेगी। इसलिए तत्क्षण नानसेन कहता है: 'और उसे न शुभ कहो और न अशुभ।' उन्मुक्त छोड़ दो। जैसे तुम नियन्ता नहीं हो।

बड़ी कठिन बात है। इसका अर्थ हुआ कि क्रोध आये तो आने दो। इसका अर्थ हुआ: घृणा आये, तो आने दो; तुम रोको मत। तुम होने दो, जो होता है। निश्चित ही जो भी फल होगा, वह भी भोगना। हमारी कठिनाई क्या है?

क्रोध से हमें तकलीफ नहीं है, उसके फल से तकलीफ है। अगर तुम क्रोध करो और पुरस्कृत किए जाओ और तुम जिस पर क्रोध करो वही फूल मालायें पहनाये, तो तुम कभी भूल कर न सोचोगे कि क्रोध पाप है या क्रोध बुरा है। तब तो तुम क्रोध का शिक्षण लोगे। तब तुम गुरुओं के पास जाओगे और उनसे कहोगे कि हमें दीक्षित करो, ऐसे क्रोध में।

न, क्रोध से तुम्हें तकलीफ नहीं हो रही है; तकलीफ हो रही है क्रोध के परिणाम से। क्रोध का परिणाम दुख है। अगर तुम उन्मुक्त अपने को छोड़ते हो, तो उसका अर्थ हुआ—जो तुम कृत्य कर रहे हो, वह भी और जो तुम फल भोगोगे वह भी; दोनों में उन्मुक्त रहो।

क्रोध हुआ तो क्रोध किया, फिर क्रोध का फल भी भोगना पड़ेगा। उसे भी तुम पूरी उन्मुक्तता से भोग लो, तुम बाधा न डालो। तुम्हारे जीवन में क्रांति निश्चित घट जायेगी। क्योंकि तुमने अगर क्रोध किया और उसका फल भी भोगा और उन दोनों को तुमने देखा और नियन्त्रण न किया (क्योंकि तुम जब नियन्त्रण में लग जाते हो, तभी तुम देखने से चूक जाते हो) तब तुम्हें इनका जहर पूरा दिखाई पड़ेगा। यह तीर तुम्हारी छाती में छिदा हुआ दिखाई पड़ेगा। देर न लगेगी—तुम इस तीर को निकाल के फेंक दोगे, तुम सोचोगे भी नहीं। क्रोध और उसके परिणाम दोनों तुमसे गिर जायेंगे। लेकिन यह क्रांति तुम्हारे किए न होगी। यह क्रांति तो तुम जब अपने को उन्मुक्त छोड़ोगे, तभी घटित होगी।

उन्मुक्तता अन्त में परम आनंद लायेगी। प्रारम्भ में बहुत दुख लायेगी। उस दुख से बचने के लिए तुम नियन्त्रण करते हो। तुम डरे-डरे जीते हो कि क्या होगा—घर का? क्या होगा—गृहस्थी का? अगर किसी के प्रेम में पड़ गये, तो क्या होगा पत्नी का? क्या होगा पति का? तुम डरे-डरे जी रहे हो। तुम इतने डरे हुए जी रहे हो कि तुम्हारे जीने को जीना कहा ही नहीं जा सकता। तब तुम डरे-डरे मरोगे।

तुम न तो ठीक से जिये और न ठीक से मरे। न तुम्हारे इस जीवन में कोई ज्योति थी और न तुम्हारे मरने में कोई त्वरा होगी। न तो तुम्हारा जीवन तूफान था, न तो तुम्हारी मृत्यु में कोई गति होगी। तुम एक लाश की भांति हो, जो घसीटे जा रहे हो।

नानसेन कहता है : 'छोड़ दो अपने को आकाश की तरह उसकी पूरी उन्मुक्तता में, पूरी स्वतन्त्रता में। और न तो उसे शुभ कहो और न अशुभ। न तो कहो कि यह ठीक है, न कहो कि यह गलत है। सिर्फ इतना ही जानो कि यही नियति है। यही मेरे होने का स्वभाव है। यही मेरा ढंग है। और इससे अन्यथा न कभी मैं हो सकता हूं और न कभी होने की कोई बात उठा सकता हूं। यह मेरा ढंग है।

शुरू में बड़ी अड़चन आयेगी, वही संन्यास की अड़चन है। वही साधक की तकलीफ है। शुरू में बड़ी अड़चन आयेगी, क्योंकि सब तरफ तुमने झूठ बोल रखा है। सब तरफ तुमने अपना नियन्त्रित चेहरा दिखलाया है। तुमने अपना असली चेहरा तो प्रकट ही नहीं किया। तुम कभी सच तो बोले नहीं। जब तुम्हें रोना था, तब तुम हंसे। जब तुम्हें गाली

देनी थी, तब तुमने प्रशंसा की। तुमने चारों तरफ ऐसा असत्य का जाल फैला रखा है, कि आज अचानक तुम भी घबड़ाओगे कि कैसे उन्मुक्त हो जाएं। यह जाल अगर किसी और ने बनाया होता, तो शायद तुम छलांग भी लगा जाते; यह तुमने ही रचा है—बड़ी मेहनत से रचा है। अब तुम उसी में गुंथे जा रहे हो। उसी में तुम्हारी गर्दन दबी जा रही है।

संन्यास का अर्थ है : बिना भय के, बिना परिणाम की चिन्ता के, बिना ठीक और गलत के विचार के जीवन जहां ले जाय, वहां जाने की तैयारी। नरक ले जाय, तो नरक जायेंगे। लेकिन अगर तुम इतने उन्मुक्त हो, तो तुम्हारे लिए नरक नहीं है। अगर तुम इतने स्वतन्त्र हो, तब तुम्हारे लिए पूरा आकाश खुला है, तुम्हारे लिए कोई कारागृह नहीं है।

कहते हैं कि ये शब्द सुन कर (सिर्फ शब्द सुन कर) जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया। तुम भी हो सकते हो। पर मैंने कहा और तुमने सोचना शुरू कर दिया। 'देखो—अभी तुम सोच रहे हो।' मैंने कहा, स्वतन्त्र हो जाओ और तुम भीतर संकुचित हो गये। तुमने कहा, बात भले ठीक हो, अपने काम की नहीं। घर-गृहस्थी वाले आदमी हैं। समाज है; दूसरे क्या कहते हैं, इसको भी सोचना पड़ता है।

सुना है मैंने कि एक रेगिस्तान में दो ऊंट यात्रा कर रहे थे। तो दोनों पसीने से तरबतर थे, कंठ प्यास से अवरुद्ध था, लेकिन दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूसरा कहे कि प्यास लगी है; क्योंकि इज्जत का सवाल है। किताबों में आदमियों ने लिखा है, ऊंटों ने तो किताबें लिखी नहीं—आदमियों ने लिखा है कि ऊंट छत्तीस-छत्तीस घंटे तक बिना पानी पिए चल सकता है। तो इज्जत का भी सवाल है। और जो पहले कहे, वह हार स्वीकार करे। आखिर एक ने कहा : बहुत हो गया। (नाउ आई डोन्ट केअर व्हाट अदर्स से, आई एम थर्सटी) अब मैं फिक्र नहीं करता कि दुनिया क्या कहती है, मुझे प्यास लगी है।

कब तुम हिम्मत जुटाओगे ? कब तुम कहोगे कि 'दुनिया क्या कहती है, इसकी अब मैं चिन्ता न करूंगा ? अब मैं तुम्हारे ढंग से अपने को बनाऊंगा नहीं, अब जो मैं हूं, उसे मैं स्वीकार करता हूं। मुझे प्यास लगी है।' तो पहली दफा ईमानदारी तुम्हारे जीवन में पैदा होगी। पहली दफा प्रमाणिक आत्मा का जन्म होगा। अन्यथा तुम एक

लम्बी झूठ हो।

कोई स्वीकार नहीं करना चाहता कि मुझसे कोई भूल हुई है। तुम सोचते हो निरन्तर कि कोई कारण है जिसकी वजह से तुम दुख में हो। यह तुम कभी स्वीकार नहीं करना चाहते कि तुम्हारी ही भूलों का इकट्ठा जोड़ है तुम्हारा दुख। भूल तो कोई स्वीकार करना ही नहीं चाहता।

मुल्ला नसरुद्दीन का पूरा परिवार उससे परेशान था। दफ्तर के आदमी परेशान थे। मुहल्ला भर परेशान था, क्योंकि वह अपने को इनफालिबल समझता था कि मुझसे कभी कोई भूल हुई ही नहीं और न हो सकती है। ऐसा आदमी बहुत दुष्ट हो जाता है, जिसको ऐसा ख्याल हो। उसके पास रहना बड़ा कठिन मामला है। क्योंकि उससे भूल कभी होती ही नहीं। जब भी भूल हो, तुम्हीं से होगी। उसकी भूलें भी तुम्हारे कन्धों पर पड़ेंगी।

आखिर एक दिन एक आदमी बहुत ही परेशान हो गया। और उसने कहा—नसरुद्दीन, एक सवाल पूछूं! जिन्दगी में कभी एक-आध बार भी तुमसे भूल हुई? नसरुद्दीन ने कहा—हां, एक बार मुझसे भूल हुई। वह आदमी भी सुन कर चौंका कि इतना भी स्वीकार कर लिया, इसकी भी आशा नहीं थी। उसने बहुत उत्तेजित होकर पूछा—वह कौन-सी घटना है, उसे जरूर कहो। नसरुद्दीन ने कहा—एक बार मैंने सोचा कि मुझसे भूल हुई, लेकिन हुई नहीं। बस, वही एक भूल है।

तुम्हारे चारों तरफ भूलों का तांता है और भूलों की तांता का आधार यह है कि तुम जो हो, उससे अन्यथा दिखलाने की कोशिश कर रहे हो।

चोर साधु की तरह अपने को प्रकट कर रहा है। बेईमान ईमानदार की तरह अपने को प्रकट कर रहा है। धोखेबाज भोलेपन का आवरण लिए है। लेकिन तुम किसी और को कष्ट नहीं दे रहे हो, पक्का समझ लेना। यह सब झूठ तुम्हारी ही गर्दन पर कस गया है। जब नानसेन कहता है कि छोड़ दो उन्मुक्त आकाश में अपने को, तो वह यह कह रहा है कि तुम फिक्र छोड़ो कि लोग क्या कहते हैं। तुम फिक्र छोड़ो कि सही क्या है, ग़लत क्या है। तुम इतनी ही फिक्र करो कि तुम्हारे लिए स्वाभाविक क्या है। तुम अपने स्वभाव के पीछे चलो।

स्वभाव का अनुकरण संन्यास है। और स्वभाव में लीन होने की प्रक्रिया का नाम सहज-योग है।

वह जो कबीर कह रहे हैं: साधो सहज समाधि भली, तो वे यही कह रहे हैं कि असहज होकर तुम बड़े कष्ट में पड़ गये हो, व्यर्थ कष्ट झेल रहे हो। एक झूठ से दस झूठ पैदा होते हैं। एक को बचाओ, तो दस झूठ खड़े करने पड़ते हैं। एक में फंसे, फिर दस में फंस जाते हो। और यह जाल अन्तहीन है। कब तुम साहस करोगे और प्रामाणिक हो पाओगे?

ध्यान रहे प्रमाणिक होना कोई नियन्त्रण नहीं है। प्रामाणिक होने का मतलब यह नहीं है कि तुम बेईमानी छोड़ो और ईमानदार हो जाओ; चोरी छोड़ो और साधु हो जाओ। प्रामाणिक होने का अर्थ है कि तुम जो हो—अगर तुम चोर हो, तो स्वीकार कर लो कि ठीक, मैं चोर हूं। 'मुझे प्यास लगी है।' तुम अपने हृदय को खोल दो, ढांको मत। जिस दिन तुम अपने हृदय को खोल दोगे और ढांकोगे नहीं, चाहे शुरू में तुम्हें अड़चन हो, जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो गई।

और जब कोई इतना प्रामाणिक हो जाता है, तो सारे जगत से, चारों तरफ से उस पर फूल बरसने लगते हैं।

प्रामाणिक का सम्मान है, झूठ का कोई सम्मान हो नहीं सकता। तुम कितना ही इन्तजाम करो, तुम जिस कोशिश में लगे हो, उसमें तुम हारोगे। झूठ जीत नहीं सकता, उसके पैर नहीं हैं—चलने को; प्राण भी नहीं हैं—श्वास लेने को।

'उन्मुक्त छोड़ दो स्वयं को, पूरी स्वतन्त्रता में छोड़ दो। और उसे न शुभ कहो न अशुभ।' कहते हैं, ये शब्द सुनकर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया। तुम भी हो सकते हो। जो जोशू के साथ घटा, वह तुम्हारे भीतर भी घट सकता है।

क्या घटा जोशू को? उसे दिखाई पड़ गई यह बात कि जीवन का दुख यह है कि मैं जो होने को हूं, उससे अन्यथा होने की कोशिश कर रहा हूं। कमल का फूल गुलाब होना चाह रहा है, गुलाब का फूल कमल होना चाह रहा है। दोनों कष्ट में पड़े हैं। जो मैं हूं, उससे अन्यथा की कोशिश नरक है। जो मैं हूं, उसका स्वीकार मोक्ष है।

भय क्या है? कौन क्या बिगाड़ लेगा? किसके हाथ में क्या है बिगाड़ने को? तुमसे कोई क्या छीन लेगा? लेकिन चारों तरफ से तुम डराये गये हो। पूरा समाज भय पर खड़ा है और इतना भय कि तुम इन्च भर भी कदम नहीं हिला सकते। सब तरफ से भयभीत हो, कंप रहे

हो। इस कम्पन से कहीं सत्य का कोई मिलन हो सकेगा ? मत कंपो। और इस कम्पन ने तुम्हें कुछ दिया भी नहीं है, इस भय से तुम्हें कुछ मिला भी नहीं है; कोई मिट्टी भी मिल गई होती, तो भी कुछ था। कुछ भी नहीं मिला : सिर्फ तुमने खोया ही खोया है।

अगर सोचो मत, तो इसी क्षण तुम उतार कर रख दे सकते हो सब; क्योंकि जिसको तुम समझ रहे हो कि उसने तुम्हें पकड़ा है—उसने तुम्हें पकड़ा नहीं है—तुम्हीं उसे जोर से पकड़े हुए हो। पकड़ छोड़ते ही संसार गिर जायेगा।

'कहते हैं, ये शब्द सुनकर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।' मुश्किल लगता है। 'मात्र सुन कर ?' पर उसने 'सुना' होगा और अगर तुम ज्ञान को उपलब्ध न हो पाओ सुन कर, तो समझना कि तुमने सुना नहीं, तुम सोचने लगे। तुम ज्यादा होशियार हो जोशू से। होशियारी में तुम चूकोगे। जोशू भोलाभाला रहा होगा। उसने थोड़े हाथ-पैर तड़फड़ाए। उसने कहा कि अध्ययन करेंगे; उसने कहा कि अध्ययन न करेंगे तो भटक न जायेंगे। लेकिन नानसेन की बात उसे दिखाई पड़ गई।

सत्य एक क्षण में दिखाई पड़ सकता है। बस, एक ही शर्त है कि उस क्षण तुम सोचो मत। जरा-सा विचार और वर्तुल शुरू हो जाता है। तुम दूर निकलना शुरू हो गये। तुम बड़ी दूर पहुंच गये। जरा-सा सोच बड़ी दूर ले जाता है। जरा-सा अ-सोच तत्क्षण तुम्हें स्वयं से मिला देता है।

न सोचने की कला ध्यान है; सोचने की कला संसार है।

जोशू ने सोचा नहीं—सुना, देखा, नानसेन की गन्ध ली। यह आदमी एक उन्मुक्त आकाश था। यह आदमी एक महाशून्य था। सामने बैठे आदमी से यह कोई सिद्धांत नहीं बोल रहा था। यह किन्हीं शास्त्रों के लिए गवाहियां नहीं दे रहा था। यह आदमी अपने अनुभव जोशू से कह रहा था। ऐसे ही इसने भी जीवन के सत्य को पाया है। ऐसे ही एक दिन थक कर, ऊब कर इसने सब बंधन उतार कर रख दिए थे। जिन्हें इसने अब तक आभूषण समझे था, पहचान लिया था कि वे जंजीरें हैं तो उनको गिरा दिया था और खुले आकाश की तरह हो गया था। सोचना बन्द कर दिया कि कोई क्या कहेगा। प्यास थी तो प्यास थी; भूख थी तो भूख थी; वासना थी तो वासना थी; क्रोध था तो क्रोध था; इसने अंगीकार कर

लिया अपने को; इसने स्वयं को बदलने की व्यर्थ कोशिश छोड़ दी। यह सहज-योगी हो गया था। और जैसे ही कोई सहज-योग को उपलब्ध होता है, क्रांति घटित हो जाती है—जो जन्मों-जन्मों से नहीं घटा है, वह दो शब्दों को सुन कर घटित हो जाता है। क्योंकि तब तुम देखते हो अपने पूरे तथ्य को: आग लगा हुआ भवन—सब तरफ जलता हुआ। फिर क्षण की देरी नहीं लगती, समय नहीं लगता। तुम कूद कर बाहर हो जाते हो। तुम देखते हो सामने ही खड़ी मृत्यु को; तुम छलांग लगा कर मार्ग से हट जाते हो।

तुमसे निरन्तर कहे जाता हूं कुछ। वह सिर्फ इसी आशा में कि किसी दिन तुम सुनोगे। तब करने को कुछ भी न बचेगा।

ध्यान रखना तुम सोचते हो कि सुनकर फिर कुछ करना है। सुनेंगे, फिर हिसाब लगायेंगे। फिर अपने काम का चुनेंगे, फिर उसके आचरण बनायेंगे। तब तुम गलती में हो। मैं तुमसे कहता हूं सुन कर ही घट सकता है। कुछ और करने को नहीं बच रह जाता। पर सुनना, सुनते वक्त बस सुनना। वहां विचार की छोटी-सी भी तरंग न हो, जो विकृत करे।

'कहते हैं, ये शब्द सुन कर जोशू ज्ञान को उपलब्ध हो गया।' तुमने भी ये शब्द सुने। अपने भीतर देखना तुम सोचने लगे और ये शब्द ऐसे हैं कि सोच पैदा होता है। ये शब्द जटिल हैं, चोट करने वाले हैं। नानसेन जैसे लोग हमेशा शाक ट्रीट-मेंट में भरोसा करते हैं।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा, "आप कहते हैं कि सब स्वीकार कर लो। और मैं वेश्यागामी हूं।" मैंने कहा, "स्वीकार कर लो। मत छिपाओ। अंगीकार कर लो। वेश्यागामी हो। छिपाने से मिटता भी नहीं है। मिटाने की कोई जरूरत भी नहीं है। वेश्या का क्या कसूर है? और तुम भी क्या कर सकते हो? जैसे हो, हो। अगर कोई कसूरवार है, तो भगवान होगा। तुम स्वीकार कर लो।"

उस आदमी ने कहा, "यह आप क्या कहते हैं? वेश्यागामी बना रहूं?" वह भी स्वीकार करने को राजी नहीं है। वेश्यागामी होने को राजी है। उसमें कोई तकलीफ नहीं है, लेकिन स्वीकार करने को राजी नहीं है। उसने कहा, "आप क्या कहते हैं। फिर तो मैं नष्ट ही हो जाऊंगा। यही तो एक आशा है कि आज नहीं कल सम्भाल लूंगा और आप कहते हैं स्वीकार कर लो?"

"कब से सम्भाल रहे हो ?" मैंने पूछा। उसने कहा, "कोई बीस साल तो हो ही गये।" मैंने कहा, 'ताकत पहले ज्यादा थी, अब कम होती जा रही है। ज्यादा ताकत में बाहर न निकल पाये, कम ताकत में कैसे निकल पाओगे ?" उसने कहा, "कुछ भी हो, लेकिन आप आशा तोड़ देते हैं ?" मैं आशा तोड़ना चाहता हूं, क्योंकि आशा ही तुम्हारे पाप का मूल है। इसीलिए तुम कल के भरोसे आज वेश्यागामी हो, क्योंकि हर्जा क्या है, कल ठीक हो लेंगे। जल्दी भी क्या है !

एक शराबी शराब पी रहा था, किसी ने उससे कहा कि जानते हो क्या कर रहे हो ? पता है कि यह तुम क्या पी रहे हो ? दिस इज स्लो प्वाइजन। (यह आहिस्ता-आहिस्ता मारने वाला जहर है) उस आदमी ने कहा, "वेट आई एम नाट इन हरी। (मैं कोई जल्दी में भी नहीं हूं।) होगा धीरे धीरे मारने वाला, लेकिन मैं जल्दी में कहां हूं।

तुम अगर स्थगित कर पाओ, तो तुम्हें सुविधा मिल जाती है। कल तुम्हारा सुरक्षा का आधार है। चोर आज हो, कल अचोर हो जाओगे। आज असाधु हो, कल साधु हो जाओगे। आज पापी हो, कल पुण्यात्मा हो जाओगे। यह 'कल' ही तुम्हारे सारे पापों को बचा रहा है। इसकी आशा में ही तुम आज पापी होने की सुविधा पा सके हो।

मैं तुमसे कहता हूं: कल भी तुम पुण्यात्मा होने वाले नहीं। तुम पापी हो, तो तुम पापी हो। और आज के अतिरिक्त तुम्हारे पास कोई समय नहीं है। जब पापी हो, तो कम-से-कम पूरी तरह तुम पापी ही हो जाओ। कल पुण्यात्मा होना है, तो जब कल आयेगा तो देखेंगे। कल के पुण्यात्मा होना है, वो जब कल आयेगा तो देखेंगे। कल के पुण्यात्मा को आज क्यों बीच में लाते हो ? कल के पुण्यात्मा को आज बीच में लाने से आज के पापी को पापी का दंश कम हो जाता है, पीड़ा कम हो जाती है, आग फीकी पड़ जाती है, अंगारा राख में दब जाता है। छलांग नहीं हो पाती है।

आज के पापी को पूरा पापी होने दो। मत कहो बुरा, मत कहो भला। 'जो है—है।' इस तथ्य को पूरी तरह जी लो और मैं तुमसे कहता हूं कि जो जोशू को घटा, वह तुम्हें भी घट सकता है।

प्रार्थना

हे प्रभो रजनीश !
मुझे प्रार्थना करनी तो नहीं आती,
पर जाने क्यों मेरा हृदय कहता है
कि तू मेरी प्रार्थना सुनेगा ।

□ कुलदीप

अच्छा ही रहा

यह अच्छा ही रहा कि परमात्मा के सिवा
किसी ने मुझे प्रेम नहीं किया,
हां, किसी ने मुझे प्रेम नहीं किया
और मैं खोजता-भटकता, थका-हारा-निराश
वहां जा पहुंचा, जहां प्रभु था ।
सच ही,
अगर जीवन में कोई प्रेम का भ्रम भी दे पाता
तो जरूर मैं वहां रुक रहता
क्योंकि मेरे लिए प्रेम ही तो परमात्मा था
और आज भी है ।
मगर प्रेम दे कौन सकता था ?
क्योंकि, परमात्मा अभी गलियों में नहीं घूमते,
अभी तो दुर्लभ हैं,
और वही दुर्लभ मिल गए हैं मुझे;
इसीलिए कहता हूं कि
यह अच्छा रहा कि दुनिया ने मुझे प्रेम नहीं किया,
और उसकी तलाश में मैं दर-दर भटका
और मारा-मारा फिरा,
और अन्ततः वहां जा पहुंचा...।

□ स्वामी अनेह भारती
जबलपुर

○ गजल

ये होश की शराब

ये होश की शराब पिये जा पिलाये जा
कुछ और ऐसे ही तू जिये जा जिलाये जा

ऐसा खिले प्रभात जिसकी सांझ हो नहीं
मुरझाये ना जो फूल, ऐसे तू खिलाये जा

उमड़ी पड़े हरेक दिल से गंगे-मोहब्बत
कुछ ऐसी माधुरी तू सुरा में मिलाये जा

हरेक कण्ठ बीन हो हरेक बोल गीत
मर जाय मौत खुद ब खुद, तू यूं जिलाये जा

ये भक्ति की तरंग है, ये प्रीत का नशा
खुद आ न सके तो हमें ही तू बुलाये जा

इतनी पिला कि झूम उठे महफिलेजहां
ये है प्रभू-प्रसाद, इसे तू खिलाये जा

न तू थके न हम न ये महफिल कभी उठे
तू जाम पर ये जाम इस तरह ढलाये जा

कुछ भी नहीं बचे यहां महबूब के सिवाय
ऐ मेरे साकिया ! तू कुछ ऐसे पिलाये जा

□ *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राज०)

राजस्थान में स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मण्डली और चित्तौड़गढ़
का साधना शिविर
रजनीश के ये भिक्खु
और राजस्थान में बहती भक्ति की यह मन्दाकिनी

भक्ति-मन्दाकिनी

मैंने देखा है वैराग्य अमृत को
बरसते हुए—
राजस्थान के घर-आंगन में
सन्तप्त हृद् कणों को
शीतल बनाते हुए
रजनीश के ये भिक्खु
प्रभु–प्रसाद से भरे अपने पात्र को
लुटा गये हैं—हर द्वार पर
और पुनः उनको
राजस्थान में बहती भक्ति की
मन्दाकिनी से भर लिया है—
रजनीश चरणों में
अर्पित करने के लिये
सैकड़ों मीराओं की आंखों से बहते
प्रेम और पीड़ा के वे आंसू
असत्य नहीं हो सकते
सैकड़ों प्रतापों के प्रभु—
आंच में पिघलते हृदयों को
झुठलाया नहीं जा सकता
वे नाचते-गाते संन्यासी साधक
और प्रगाढ़ प्रेमालिंगन में आबद्ध
वे भीगते-रीझते हृदय
वे भाव-स्नात दृष्टियां
वे सिसकते-सुबकते डूबते-उतराते
प्रेमीगण
और किसी अनुबुझ आह्लाद में
डूबी—वे नृत्यमयी मुद्राएं
और प्राणों की गहराइयों से निकलते
वे संगीत
आह ! यह एक
आनन्दोत्सव ही तो था
चित्तौड़ दुर्ग पर
रजनीश उपस्थिति में हुआ
साधना-शिविर
इस उत्सव का समापन नहीं
एक ऐसा प्रारम्भ है जिसका
कभी अन्त न होगा
राजस्थान का
प्रभु प्रेम से तरंगायित हृदय सरोवर
बन गया है एक जीवन्त तीर्थ
जिसके चप्पा-चप्पा में रजनीश के
चरण अंकित हैं
जिसका कण-कण
प्रभु-प्रेम से सिक्त है
जिसकी धूलि सर पर लगाने योग्य—
अनमोल विभूति है ।

□ *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राजस्थान)

सख्त व्यवस्था : एक अन्तर्दर्शन

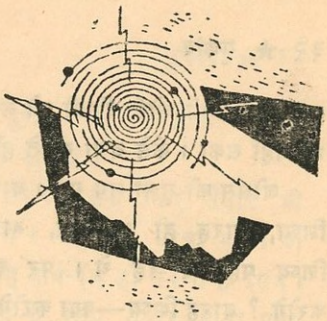

☐ प्रस्तोता : स्वामी ईश्वर समर्पण, बम्बई

भगवान श्री की महा करुणा जिस बहु-आयामी लोक-कल्याण में बह रही है, उस दिशा में भौतिक जगत् में कठोर व्यवस्था क्यों जानकर अपनानी पड़ी, उस पर एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक उत्तर। विशेष रूप से 'युक्रांद' के प्रेमी सुविज्ञ साधकों के लिए प्रस्तुत। यह प्रस्तुतीकरण स्वामी ईश्वर समर्पण, बम्बई के द्वारा हो रहा है जिसे पूज्य भगवान श्री ने 'ताओ उपनिषद्' प्रवचन-माला के अन्तर्गत २७ जनवरी, ७५ को पूना में उद्‌बोधित किया।

●★●

प्रश्न :

लाओत्से पर बोलते हुए आपने कहा कि जिस पर भरोसा न हो उसके लिए नीति नियम और पुलिस की व्यवस्था की जाती है, और आपने यह भी कहा कि बुरे आदमी में भी शुभ देखना गरिमा है, तो प्रश्न यह उठता है कि यह आश्रम में सुरक्षा की इतनी कड़ी व्यवस्था क्यों है ?

भगवान श्री :

बहुत सी बातें समझनी पड़ेंगी, और समझ लेनी उचित हैं। मेरे लिए तो कोई बुरा नहीं है। कोई शत्रु नहीं है। आश्रम में जो व्यवस्था है, वह किसी शत्रु से बचने की व्यवस्था भी नहीं है। तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ता होगा। वह तुम्हारी व्याख्या है। आश्रम में जो व्यवस्था है वह है मित्रों से बचने की। और

शत्रुओं से कभी कोई किसी को बचा भी नहीं सका। कैसे बचा सकते हो?

जीसस को सूली लग गई। बारह शिष्य, बारह ही पहरेदार, बारह शिष्य पहरा दे रहे थे। पर क्या करोगे? बारह शिष्य—क्या करोगे? दुश्मन पांच सौ की भीड़ लेकर आ गया था। सब व्यवस्था तोड़ी जा सकती है। फिर जीसस तो फकीर थे। लेकिन अमरीका के पास जितनी व्यवस्था है, लिंकन को, कनेडी को बचाने की, वह भी नहीं बचा सकते। बचाना तो करीब-करीब असंभव है शत्रु से। कभी नहीं बचा सकते। गान्धी जी को बचाने के सब उपाय थे, क्या करोगे? एक पागल आदमी खत्म कर दे सकता है। जिनसे तुम बचा लेते हो, उनसे बचाने को कोई जरूरत ही नहीं, क्योंकि वे कोई खत्म करने को हैं ही नहीं, जो खत्म करना चाहता है उससे तुम नहीं बचा पाते।

अभी ललितनारायण मिश्र की जो मृत्यु हुई, उसमें एक हजार सैनिक चारों तरफ खड़े थे, क्या करोगे? एक पागल आदमी बम फेंक देता है। शत्रु से तो बचाने का कोई उपाय ही नहीं। उस भूल में तो कोई कभी पड़े ही नहीं कि कोई शत्रु से कभी किसी को बचा सकता है। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मेरे लिए कोई शत्रु है भी नहीं, उस दिशा में सोचने का कोई कारण नहीं है। यह व्यवस्था है—मित्रों से बचाने की। मेरी परेशानी मित्रों से है, और परेशानी का कारण मुझे नहीं, वह भी समझ लेना चाहिए। वर्षों तक मैं अकेला घूम रहा था, सारे मुल्क में काम करना असम्भव हो गया। काम जिसको करने के लिए मैं शरीर में रुका हूं। रात सो रहा हूं, कोई दो बजे रात कमरे में घुस जाता है, वह कहता है पैर दबाने हैं, वह, बड़े भाव वाला आदमी है, वह रात भर पैर ही दबाता रहता है, सोना ही मुश्किल है। रात मैं कुछ और कर रहा हूं, वह भी करना मुश्किल है। ट्रेन में सवार हूं, चार आदमी ट्रेन में चढ़ आते हैं, वे कमरे में आते हैं, वे बातचीत कर रहे हैं। ट्रेन में मुझे इतने लोगों ने बातचीत की, जब मैं पहुंचूं, जहां मुझे बोलना है, तो मेरा गला ही बैठा दिया उन्होंने। ट्रेन में जरा जोर से बोलना पड़ता है, और उन्हें सुविधा मिल गई कि आठ-दस घण्टे वे बातचीत में लगाये हुए हैं। उनको मैं कितना ही कहूं, कि मुझे छोड़ दें, कृपा करें, पर वे प्रेमी हैं, वे कहते हैं छोड़ने का मन नहीं होता।

यहां भी खुला छोड़ा जा सकता है। मैं वृक्ष के नीचे हो सकता हूं,

लेकिन तब जो मैं कर रहा हूं, तब वह करना असम्भव हो जायेगा—बिलकुल असम्भव। और जो मैं कर रहा हूं, उनमें से बहुत-सी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है।

शंकराचार्य के जीवन में एक उल्लेख है, एक बड़ा महत्वपूर्ण विवाद हुआ—मन्डन मिश्र के साथ। बड़ा मुश्किल था, किसको खोजें अध्यक्षता के लिए। क्योंकि शंकर और मण्डन का विवाद था। दो बड़ी महिमाशाली प्रतिभायें, खोज मुश्किल थी, लेकिन मण्डन की पत्नी एकमात्र दिखाई पड़ती थी जो अध्यक्ष हो सकती। लेकिन शंकर के अनुयायिओं की चिन्ता थी कि मण्डन की पत्नी कहीं पक्षपात न करें, क्योंकि पति एक प्रतियोगी है। कोई उपाय न सोच कर शंकर को तो चिन्ता न थी। शंकर ने कहा, कि ठीक। विवाद हुआ और मंडन की पत्नी ने जितना निष्पक्ष होकर निर्णय दिया, बड़ा कठिन है। उसने मण्डन मिश्र को पराजित घोषित किया, लेकिन एक शर्त लगा दी। वह शर्त बड़ी मुश्किल की हो गई, उसने कहा कि, मण्डन तो हार गये, लेकिन यह हार आधी है। क्योंकि अभी पत्नी है। और शंकर से कहा, यह तो आप भी मानेंगे कि पत्नी अर्धांगिनी है, तो अब मुझे भी हराना पड़ेगा आपको, तभी पूरी जीत समझना। नहीं तो आधी जीत है।

शंकर इसके लिए तैयार भी नहीं थे। यह कहीं सोचा भी न था कि यह दांव-पेंच हो सकता है इसमें। विवाद के लिए तैयार होना पड़ा, और मण्डन मिश्र की पत्नी ने बड़ी कुशलता की, उसने ब्रह्म और माया, यह सब बातें न पूछीं, उसने तो काम ऊर्जा और काम वासना के सम्बन्ध में सवाल उठाया। शंकर तो ब्रह्मचर्य हैं, मुश्किल में पड़ गये। उन्होंने कहा—तू ऐसे सवाल उठा रही है, जिनका मुझे अनुभव नहीं है। तो मण्डन मिश्र की पत्नी ने कहा तुम समय चाहो तो समय ले लो, अनुभव करके आ जाओ। छः महीने का समय मांग कर शंकर किसी तरह विदा हुए। बड़ी मुश्किल में पड़ गये कि क्या किया जाए। तो छः महीने तक शंकर ने अपनी देह छोड़ दी और उनकी लाश पर छः महीने तक सतत् उनके बाहर शिष्य पहरा देते रहे। चौबीस घण्टे पहरा देना पड़ा। शंकर एक दूसरे आदमी के शरीर में प्रविष्ट हुए जो कि गृहस्थ था। जो अभी-अभी मरा था एक राजा। उसके शरीर में प्रविष्ट हो गये। उसकी पत्नी के साथ काम के सारे रहस्यों का अनुभव करके वापस अपनी देह में लौटे। वह सतत पहरा था। उसमें

एक क्षण भी पहरे में चूक हो जाती तो वह देह अस्त व्यस्त हो जाती, वापस लौटना मुश्किल हो जाता।

बहुत क्षणों में मैं देह के बाहर हूं। अब मैंने जितने लोगों को दीक्षा दी है, जितने लोगों को संन्यास दिया है उन पर बहुत तरह के काम मुझे करने हैं। कोई हजारों मील दूर है और उसे जरूरत है तो मैं शरीर के बाहर हूं। और मेरे में उस समय कोई घुस आए तो मेरा लौटना मुश्किल है। अगर मेरे शरीर को कोई हिला दे, कोई पैर ही दबाने लगे, तो फिर मेरे लौटने का कोई उपाय नहीं। इन सारी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है। इसलिए तुम अपनी बुद्धि से जितना सोचते हो सोच लेते हो। तुम सोचते हो इतने पहरेदार यहां खड़े हैं, इसकी क्या जरूरत ? तुम बड़े तर्क अपने मन में उठा लेते हो। यह पहरेदार अभी कम हैं। जैसा काम मैं कर रहा हूं, उसके लिए अभी और भी व्यवस्था की जरूरत है। क्योंकि अभी इनको भी पार करके लोग पहुंच जाते हैं। दो महीने पहिले ही यहां मीटिंग पूरी हुई, तो पीछे की गैलरी से मित्र पहुंच गए। दोनों वहां पीछे से दरवाजा खटखटा रहे थे। वे सब प्रेमी हैं। भाव से भरे हुए लोग हैं।

ये जो पहरा है, यह शत्रुओं से बचाने के लिए नहीं है। यह तुमसे बचाने के लिए है, और तुम्हारे ही काम के लिए है। और तुम अपने भावावेश में कुछ कर सकते हो। लेकिन तुम्हारा भावावेश सवाल नहीं है। तुम्हारा भावावेश बिलकुल ठीक है। लेकिन तुम कुछ कर सकते हो। जो तुम्हारे लिए ही अन्ततः घातक हो जायेगा। मुझे लोग पूछते हैं कि आपसे मिलने में इतनी अड़चन क्यों? साधु संतों से मिलने जुलने में कोई अड़चन नहीं होती है। मैं भी जानता हूं, मैं भी झाड़ के नीचे बैठ सकता हूं। पर सिर्फ तब मैं तुम्हारी पूजा ले सकता हूं, तुम्हारे लिए कुछ कर नहीं सकता। तो तुम्हारे साधु सन्त तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। बड़े प्रसन्न हैं। क्योंकि जब चाहो जाकर मिल सकते हो। लेकिन काम असम्भव है। तुम्हारे लिए कुछ करना हो मुझे, मैं झाड़ के नीचे नहीं हो सकता। तुम्हारी बुद्धि, तुम सोचते हो कि क्यों मैं एयर कण्डिसन्ड कमरे में हूं, साधु सन्त को एयर-कण्डिसन्ड कमरे की क्या जरूरत ? लेकिन तुम्हें कुछ भी अन्दाज नहीं है, ये तुम्हारी अपनी मुश्किलें हैं और बहुत सी बातें तुमसे कही भी नहीं जा सकतीं। अगर मैं शरीर छोड़ता हूं तो मेरे कमरे का टेम्प्रेचर वही का वही रहना चाहिए, जिस टेम्प्रेचर में मैंने छोड़ा, उसी

टेम्प्रेचर में मैं शरीर में प्रवेश हो सकता हूं, नहीं तो नहीं, सम्भव नहीं है। तो दो ही उपाय हैं। या तो मैं हिमालय की गुफा में चला जाऊं, जहां टेम्प्रेचर बराबर रहता है। इसलिए हिमालय की गुफा खोजते रहे लोग। लेकिन तब तुम पर इतना काम न कर सकूंगा। अगर मुझे अपने पर काम करना हो तो हिमालय की गुफा ठीक है। लेकिन वह काम पूरा हो चुका है। मुझे अपने पर कोई काम नहीं करना है। अगर तुम पर काम करना है तो यहाँ भीड़, बाजार और बस्ती में होना जरूरी है। तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी समझ के ऊपर नहीं जा सकतीं। तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं। लेकिन जब भी तुम्हें यहां ऐसा मालूम पड़े जो तुम्हारी समझ के पार जा रहा है तो जल्दी निर्णय लेने की कोशिश मत करना। कोशिश करना कि समझ थोड़ी और बढ़ जाये। जैसे-जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे तुम्हारी समझ साफ होने लगेगी। वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा कि क्या प्रयोजन है ?

शत्रु से बचने का कोई सवाल नहीं है, कोई कभी किसी को शत्रु से बचा नहीं सकता। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मित्रों से बचाने का सवाल है। क्योंकि वे ही अपने भावावेश में सारे काम में बाधा डाल दे सकते हैं। तो मुझे निरन्तर सख्त होता जाना पड़ेगा।

अगर सच में ही मैं तुम्हें इसी जीवन में कहीं पहुंचा देना चाहता हूं, तो मुझे और सख्त होता जाना पड़ेगा। वह तुम तभी समझ पाओगे, जब उस ऊंचाई तक पहुंचोगे, तभी तुम मुझे धन्यवाद दे पाओगे उसके पहले तुम धन्यवाद भी नहीं दे सकते। तब तक तुम न मालूम कितनी तरह की आलोचना करते रहोगे। और तुम ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी आलोचना का मुझे पता नहीं चलता। तुम्हारी बुद्धि को मैं जानता हूं, मुझे पता है कि इस बुद्धि से क्या-क्या सवाल उठ सकते हैं। तुम्हारे बिना कहे मैं जानता हूं, कि तुम्हारे सवाल क्या हैं। निर्णय भर मत लेना, कोई मत मत बनाना, जल्दी मत करना, समझ को थोड़ा बढ़ने दो, थोड़ी ऊंचाई पर आने दो, थोड़ा प्रकाश फैलने दो। तुम्हें सब चीजें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी कि क्यों ऐसा है।

लाओत्से कुछ काम नहीं कर सका, क्योंकि झाड़ के नीचे बैठा था। बहुत से ज्ञानी इस संसार से ऐसे ही चले गये हैं बिना काम किए। क्योंकि तुम्हारी मान्यताएं बड़ी अजीब हैं, तुम्हारी मान्यताओं के अनुसार काम ही करना मुश्किल है।

तुम अपनी ही मान्यताओं के कारण हजार तरह की हानियां झेलते रहे हो।

एक संन्यासी को मैं अपने बचपन से ही जानता रहा हूं, परमज्ञान को उपलब्ध वह व्यक्ति हो गये। तुममें से शायद कोई जबलपुर आता जाता रहा हो तो शायद कभी उनका देखना भी हुआ हो। जबलपुर में एक परम योगी थे, उनका नाम भी किसी को पता नहीं। चूंकि वे अपने हाथ में हमेशा एक मग्घा लिए रहते थे, इसलिए उनका नाम मग्घा बाबा था। वे कहीं भी बैठे रहते थे, किसी झाड़ के नीचे या किसी दूकान के बाहर, छप्पर के नीचे, किसी की दालान में। और जब भी मैं उनके पास कभी जाता, तो उनको हमेशा परेशानी में पाता, और परेशानी यह थी कि उनको लोग छोड़ते ही नहीं थे। रात दिन लोग बैठे थे, क्योंकि लोगों को ख्याल था कि उनके चरण दबाने से बड़े पुण्य का अर्जन होता है और मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं। तुम सोच सकते हो कि उनकी क्या गति कर दी। चौबीस घण्टे लोग उनके पैर दबा रहे हैं; न वे सो सकते हैं, उनको मतलब ही नहीं है लोगों को उनसे। न वे कोई काम कर सकते हैं कोई उपाय ही नहीं। वहां कतार लगी रहती लोगों की, एक ने पांव दबा लिये तो दूसरा कतार लगाये खड़ा है और रात में जो लोग काम करते रहते हैं रिक्शेवाले हैं, ड्राइवर हैं, फलां है, ढिकां हैं, वे सब रात में वहां इकट्ठे हैं। रात में रिक्शेवाले कतार लगाये खड़े हैं, मग्घा बाबा के पैर दबा रहे हैं। मैंने उनसे कहा, कि आपका जीवन यूं ही जा रहा है। इस जीवन ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है। वे साधारणत. किसी से बोलते नहीं थे। एक दिन एकान्त पाकर मैं उनसे कहा, तो उन्होंने कहा कि ऐसा ही जायेगा, पर मुझसे यही गलती हो गई कुछ भी लाभ नहीं हो पा रहा है, और यह जो लोग हैं, इनको भी कोई लाभ नहीं हो रहा है, उनके यह सब छोटे ख्याल हैं कि पैर दबाने से किसी की बीमारी ठीक हो जायेगी। बीमारी ठीक भी हो गई तो क्या ठीक हो गया। किसी को ख्याल है मुकदमा अदालत में जीत जायेगा, जीत भी गये तो क्या हो गया। मग्घा बाबा जैसा आदमी इन कामों के लिए नहीं है। यह तो बिना उसके हो जायेंगे और हों या न हों उनका मूल्य ही कुछ नहीं है। उनको देखकर ही मैंने तभी तय कर लिया था कि जिस दिन भी मुझे काम करना हो, उस दिन पहले से ही सावधानी बरतनी जरूरी है।

तो जब तक मैं यात्रा करता रहा तब तक मैंने कोई व्यवस्था नहीं की, क्योंकि मैंने दूसरे तरह का काम शुरू

नहीं किया, तो मैं लोगों को निमन्त्रण देता रहा घूमकर। तब मैं अकेला घूम रहा था, सुरक्षा की जरूरत तो तब थी। अगर शत्रु से सुरक्षा करनी है तो जरूरत तो तब थी, जब मैं बिना आदमी को लिए घूम रहा था पूरे मुल्क में, चौबीस घन्टे भीड़ में था, लेकिन तब कोई सुरक्षा का सवाल न था क्योंकि शत्रु कोई नहीं था उससे कोई सुरक्षा की जरूरत भी नहीं है।

पूना आते ही मैंने अपनी व्यवस्था का पूरा आयाम बदल दिया, अब मैं काम कर रहा हूं। अब मुझे भीड़ में उत्सुकता नहीं है और न मैं चाहता हूं कि यहां भीड़ हो। गलत लोगों को किसी भी कारण भीतर नहीं आने देना चाहता हूं। क्षण भी देने को मेरे पास नहीं। अब मैं सिर्फ उन पर काम कर रहा हूं जिन पर कुछ हो सकता है। अब मेरी सारी शक्ति उन पर ही लगा देनी है, कि मेरी शक्ति का एक भी कण यहां वहां न जाए। इसलिए सारी व्यवस्था जरूरी है, मैं व्यवस्था से ही रहूंगा और यह तुम्हारे लिए। यद्यपि तुम्हें यह जंचेगा नहीं, तुम पसन्द करते हो कि मैं वृक्ष के नीचे बैठा होता, जब तुम्हारी मौज होती आ जाते, मिल जाते, बकवास कर जाते, पैर दबा लेते, फूल चढ़ा जाते हांलाकि उससे तुम्हें कुछ भी नहीं होता, लेकिन तुम प्रसन्न होते। तुम्हारे अज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

●

युक्रांद सहायता निधि के अन्तर्गत प्रकाशित

गीता अध्याय ११

(भगवान श्री कृष्ण का विराट स्वरूप दर्शन)

मूल्य : २२ रु०

अपना आदेश वी० पी० पी० द्वारा देकर हमें सेवा का अवसर दें।

☐ आकर्षक कमीशन एवं पोस्टेज फ्री व्यवस्था ☐

अरविन्द कुमार, 'युक्रांद' सहायता निधि, ७९० राइट-टाउन, जबलपुर

ईश्वर-दर्शन

□ *योगी गोपाल किरण*
दुधपुरा, मंगलगढ़,
समस्तीपुर (बिहार)

नहीं-नहीं,
दुर्लभ-असंभव—
ईश्वर का दर्शन ।
क्षणभंगुर ससीम दृष्टि में,
शक्ति कहां ?
जो—
अवलोकन कर ले,
उस असीम और नित्य सत्य को ।
जो—
अगोचर है ।
बुद्धि, वचन, तर्क, कल्पना के अतीत ।
'अर्थहीन है बात',
खो नहीं पाया, जिसको तूने ।
अनुसंधान—यह खोज
किसकी खोज ?
जो तुम हो स्वयं ।
खोजना ही है;
तो खोज लो—
उन आवरणों को ।
जिनके कारण 'स्वयं-प्रभु' को
भूल गए हो ।
माया में भूल गए हो ।
जाओ—आवरणों के पार ।

तुम ही हो, सत्य निराकार ।
हो जाता है दर्शन अगर किसी को—
'उसके' नाम पर,
वह तो है उसी के मन की कल्पनाएं ।
मन समर्थ है देने में
कल्पना का आकार ।
परन्तु 'वह' तो है—शून्यातिशून्य,
'निराकार ।'
आवरणों के भेदन
ही सत्य का दर्शन ।
स्वयं को जानना,
और उपलब्धि है सत्य की ।
विचारों का, तिमिर, ज्योति का,
अनहद—अनाहत नाद ।
पूर्ण शून्य और पूर्ण जागरण,
ईश्वर—मैं—तुम—सत्य,
इन्हीं के बाद ।
धन्य है साधना,
संबल—सत्य तक जाने का ।
आवरण-वसन जलाने का ।
धन्य साधना
धन्य !!

'नहीं राम बिन ठांव'

○ यह प्रवचन भगवान श्री ने 'नहीं राम बिन ठांव' प्रवचन-माला के अन्तर्गत ३०।५।७४ को ६वें क्रम में पूना आश्रम में दिया है, जिसमें मन्त्र-शक्ति आध्यात्मिक यात्रा नहीं है, इस पर वैज्ञानिक अन्वेषण हम सबको मिला है। ○

□ स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
पूना

प्रश्न :

अलग-अलग धर्मों ने अलग-अलग महामन्त्र पाये हैं, जैसे 'ओम् नमो शिवाय', 'नमो अरिहंताणं', 'अल्लाहो अकबर', 'ओम् मणिपद्मे हुं', तो ऐसे महामन्त्र कौन-सी अवस्था में उतरे हैं और इनका भीतर के कौन-कौन से केन्द्रों से कैसा संबन्ध है ? और साधक इनमें से अपने ही योग्य महामन्त्र कैसे चुने ?

भगवान श्री :

साधक दो प्रकार की यात्राएं कर सकता है, एक यात्रा है शक्ति की और दूसरी यात्रा है शांति की। शक्ति की यात्रा सत्य की यात्रा नहीं है, शक्ति की यात्रा तो अहंकार की ही यात्रा है। फिर शक्ति धन से मिलती हो, पद से मिलती हो या मंत्र से। तुम शक्ति चाहते हो तो सत्य नहीं चाहते हो। तुम्हारे द्वारा अर्जित की गई शक्ति शरीर की हो, मन की हो या तथा कथित अध्यात्म की हो, तुम्हें मजबूत करेगी, तुम जितने मजबूत हो परमात्मा से उतने ही दूर हो। तुम्हारी शक्ति परमात्मा के समक्ष तुम्हारे अहं की घोषणा है। तुम्हारी शक्ति ही तुम्हारे लिए बाधा बनेगी, तुम्हारी शक्ति ही वास्तविक अर्थों में परमात्मा के समक्ष तुम्हारी निर्बलता है। तो जितने तुम शक्तिशाली बनोगे अपनी आंखों में उतने ही परमात्मा के द्वार पर निर्बल होते जाओगे। इसलिए शक्ति को खोज वास्तविक साधक की खोज नहीं। लेकिन साधक उस दिशा में जाता है क्योंकि हम जो संसार में खोजते हैं वही हम परमात्मा में भी खोजते हैं। जो हमें यहां नहीं मिला उसे ही हम वहां पा लेना चाहते हैं। तो संसार और हमारे मोक्ष में एक सातत्य है, एक कन्टिनयुटी है, बाजार में खोजा जैसे वह नहीं मिला। उसे

हम मंदिर में खोजते हैं लेकिन खोज वही है। धन में जिसे खोजा नहीं पाया, उसे हम धर्म में खोजते हैं, लेकिन खोज वही है, खोज करनेवाला जरा भी बदला नहीं है। एक जगह असफल हुए तो दूसरी जगह सफलता की अकांक्षा जमा लेते हैं लेकिन तुम शक्तिशाली होना क्यों चाहते हो ?

तुम होना चाहते हो यही तुम्हारा दुःख है। तुम मिटोगे तो आनंद घटेगा तुम्हारी अनुपस्थिति में वर्षा होगी अमृत की, तुम्हारे रहते यह होनेवाला नहीं है। मंत्र शक्तिदायी है, तो मंत्र से शक्ति मिलती है, निश्चित मिलती है, इसे हम समझें मंत्र करता क्या है, मंत्र मन को एकाग्र करता है, तुम्हारी सारी बिखरी हुई मन की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं फिर वह मंत्र कोई भी हो, अल्ला हो, अकबर हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अपना खुद का मंत्र भी बना ले सकते हो। मंत्र में आये शब्दों का भी कोई अर्थ नहीं है। मंत्र का प्रयोजन न शब्दों से है, न अर्थ से, मंत्र का प्रयोजन मन को एकाग्र करने से है। इसलिए कुछ भी अनर्गल, अर्थहीन शब्द भी मंत्र का काम दे देंगे। जब तुम मंत्र की रटन करते हो तब तुम्हारे सारे विचारों की शक्ति विचारों से हट कर मंत्र में प्रवाहित होने लगती है, चित्त में मंत्र ही रह जाता है और भीतर तुम्हारे चित्त में उर्जा के द्वार हैं, उनके बहाव को और कोई दिशा नहीं बचती, जब तुम विचार करते हो तो तुम्हारी शक्ति अनंत धाराओं में बह रही है, एक विचार पश्चिम जा रहा है, एक पूरब, एक दक्षिण जा रहा है, एक उत्तर जा रहा है। तुम बहुत तरफ बह रहे हो जब तुम विचार कर रहे हो। इकट्ठे नहीं हो, बंटे हो, विभाजित हो, जब तुम मंत्र का जाप कर रहे हो तब सारी उर्जा एक दिशा में प्रवाहित होने लगती है।

जैसे हम सूरज की किरणों को एक कांच के लैंस से इकट्ठा कर लें तो आग पैदा हो जाती है। सूरज की किरणों में आग तो छिपी है लेकिन पृथक पृथक् ज्यादा से ज्यादा गरमी पैदा हो जाती है, वैसे ही तुम्हारे मन में भी बड़ी आग छिपी है, अलग अलग सिर्फ उष्णता रहती है। मंत्र उन्हें इकट्ठा करने का उपाय है, इकट्ठे होते ही से बड़ी गर्मी उर्जा पैदा होती है और अगर तुम सतत् मन्त्र का प्रयोग करते हो तो तुम्हारे जीवन में अनेक शक्ति की घटनाएं घटनी शुरू हो जायेंगी जो तुम्हारे अहंकार को बड़ा रस देंगी, तुम जो कहोगे वह सच होने लगेगा, तुम जो बोल दोगे वैसा हो जाएगा। तुम अभिशाप दे दोगे तो फलित हो जाएगा, तुम वरदान दे दोगे तो पूरा हो जाएगा क्यों-

कि तुम्हारी उर्जा इतनी इकट्ठी हो गई है कि तुम्हारे शब्द अब सार्थक होने लगेंगे। उनकी सार्थकता का कारण यही है कि जब कोई व्यक्ति इकट्ठी उर्जा से कुछ कहता है तो वह दूसरे के अचेतन तक प्रवेश कर जाता है, उसका तीर सीधा दूसरे के हृदय में चला जाता है और दूसरे के हृदय में कोई बात पहुंच जाए तो उसके परिणाम शुरू हो जाते हैं। अगर तुमने किसी व्यक्ति को कह दिया कि कल सुबह तुम बीमार पड़ जाओगे अगर यह कहते क्षण में यह तुमने जो कहा है मंत्र की तरह तुम्हारे भीतर रहा हो और कुछ भी नहीं, कोई दूसरा विचार विघ्न बाधा डालने को नहीं, बस यही तुम्हारा नमोकार मंत्र रहा हो कि 'कल सुबह तुम बीमार पड़ जाओगे' और तुम्हारा पूरा चित इसमें प्रवाहित हुआ हो तत्क्षण तुमने दूसरे के हृदय को घाव से भर दिया, अब यह आदमी रात भर सो न सकेगा उसने तुम्हारी आंखें देखीं, तुम्हारा वक्तव्य सुना, तुम्हारा ढंग देखा और इसके मन पर यह छाप पड़ गई कि तुमने जो कहा है उससे बचना मुश्किल है। इसका मन भी अब इस मंत्र के आसपास घूमेगा, यह रात सपने में भी तुम्हें देखेगा, रात सपने में भी इसे यही वचन सुनाई पड़ेगा, यह कई बार मन में कहेगा इससे कुछ होनेवाला नहीं, डरो मत, भय मत करो, लेकिन भीतर से कोई इसे भय-भीत किए जाएगा।

चाहे यह कहे कि डरो मत, चाहे यह डरे दोनों हालत में यह मन्त्र दोहरा रहा है, तुम्हारे मंत्र को, सुबह होते-होते यह बीमार पड़ जाएगा। यह बीमारी तुमने पैदा की आधी, आधी इसने पैदा की और ठीक ऐसा ही तुम जीवन के बहुत अंगों में कर सकते हो और एक बार तुम्हारा वचन सार्थक होने लगे तो तुम्हारा आत्म विश्वास बढेगा, तुम और बल शाली होने लगोगे। जितना तुम्हारे वचन सही होंगे उतना ही तुम्हें लगेगा कि मैं कोई दिव्य शक्ति, कोई सिद्धी से भरा हुआ हूं। यह भरोसा तुम्हारे मंत्र को मजबूत करेगा। हर मंत्र तुम्हारे भरोसे को मजबूत करेगा, तुम धीरे-धीरे अनेक शक्तियों का अनुभव करने लगोगे! यह जो शक्तियां हैं, इन्हें योग ने सिद्धियां कहा है। यह सिद्धियां परमात्मा के मार्ग पर सबसे बड़ी बाधाएं हैं। पातंजलि ने योग सूत्रों में इनका उल्लेख किया है ताकि तुम इनसे सावधान रहो, इनकी तरफ जाना नहीं, जा चुके हो तो वापिस लौट आना है। जितना जल्दी लौट आओ उतना अच्छा है क्योंकि जो समय इसमें खोया वह बिल्कुल व्यर्थ ही जाता है और हर बार जितने

आगे तुम इन दिशाओं में जाते हो लौटना मुश्किल होने लगता है। अगर कोई मुझसे पूछे तो मैं कहूंगा संसार शक्ति की खोज है, सिद्धी की खोज है। परमात्मा शांति की शून्यता की खोज है। वहां तुम मिटते हो, वहां तुम धीरे धीरे लीन होते हो। सिद्धी की खोज में आखिर तुम बचोगे, परमात्मा बिल्कुल नहीं। शांति की खोज में तुम न बचोगे, अंत में सिर्फ परमात्मा बचेगा और इन दो में से एक का मिटना जरूरी है। यह दोनों साथ साथ नहीं हो सकते। परमात्मा और तुम साथ-साथ नहीं हो सकते, तुम्हारा 'को-एक्जिसटेंस' तुम्हारा सह अस्तित्व असंभव है। जब तक तुम हो तब तक परमात्मा नहीं, जब परमात्मा है, तब तुम नहीं।

तो सिद्धि और शक्ति तो तुम्हें मजबूत करेगी। इसलिए मंत्रों के साधक परम अहंकार से भरे हुए दिखाई पड़ते हैं। धनी का अहंकार उसके सामने कुछ भी नहीं, पद पर बैठे राजनीतिज्ञ का अहंकार उनके सामने कुछ भी नहीं, उनका अहंकार बड़ा सूक्ष्म और भीतरी है और उसका कारण भी है क्योंकि धन छीना जा सकता है, चोरी जा सकता है, धन का मूल्य भी क्या है? पद आज है कल न हो, राजनीति का भरोसा कितना लेकिन मंत्र का भरोसा ज्यादा प्रबल है, चोर छीन नहीं सकते, जनता का लोकमत बदल नहीं सकता और मंत्र तुम्हारे मन पर ही निर्भर है किसी और पर नहीं। इसलिए तुम ज्यादा सबल आत्मनिर्भर और अपने पैरों पर खड़े मालूम पड़ते हो। साधक अगर सिद्धि की दिशा में चला जाए तो भटक गया, रस बहुत आयेगा क्योंकि अहंकार को रस आना ही इस तरह की चीजों से है। अगर एक चींटी इस तरफ आ रही है और तुम सिर्फ मनोबल से उसका रास्ता बदल दो हालांकि इस कृत्य में कोई सार नहीं है। पर फिर भी तुम्हें रस आएगा। रूस में एक महिला है जिस पर बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं, वह किसी भी वस्तु को अपने मन से चालित कर देती है। टेबिल रखी है, छः फीट दूर वह खड़ी हो जाए पन्द्रह मिनिट को मन एकाग्र करे तो वह टेबिल को हिलाना शुरू कर दे, टेबिल उसकी तरफ सरक सकती है, दूर जा सकती है और सब तरह के जांच पड़ताल, वैज्ञानिक व्यवस्था से सब समझा गया है, कोई धोखाधड़ी नहीं है। उस महिला को मिलना क्या है? दो पौंड वजन खो जाता है पंद्रह मिनिट के प्रयोग में और एक सप्ताह के लिए वह निर्बल हो जाती है, एक सप्ताह बिस्तर से नहीं उठ सकती। दो पौंड वजन शरीर से तत्क्षण कम हो जाता

है क्योंकि जब तुम मन को एकाग्र करके अपनी शक्ति को बाहर फेंकते हो तब तुम्हारे शरीर की उर्जा भी उसमें क्षीण होती है। लेकिन फिर भी वह महिला बड़ी आनन्द ले रही है, उसका सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है इस उपद्रव में। परिवार डमा-डोल हो गया, बच्चे की चिंता करनी मुश्किल, पति की फिक्र करनी मुश्किल घर तो अस्त व्यस्त हो गया है और यह खेल बन गया है लेकिन अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही है। अखबारों में फोटो छप गई है, वज्ञानिक अध्ययन करने आ रहे हैं, और कुछ चमत्कार घटित होता है। लेकिन चमत्कार का अर्थ क्या है? इससे हल भी क्या है? टेबिल तुम हाथ से हटा सकते थे जिस में कि रत्ती भर ताकत लगती है। उसे तुमने मन से हटाया और दो पौंड शरीर की उर्जा क्षीण की और सात दिन तक अस्वस्थ रहे।

रामकृष्ण के पास किसी ने आके एक दिन कहा कि लोग कहते हैं आप परमहंस हो, लेकिन कोई ऐसी सिद्धि तो दिखाई नहीं पड़ती। मेरे गुरु हैं वे पानी पर चलते हैं। रामकृष्ण कहने लगे मैं दो पैसे देकर नदी पार हो जाता हूं तो जो कार्य दो पैसा देने से हो जाता हो तुम्हारे गुरु ने कितने वर्षों में यह कला सीखी। शिष्य ने कहा कम से कम बीस वर्ष उनको मंत्र की साधना में लगे। रामकृष्ण ने कहा कि बड़ी मूढ़ता है जो काम दो पैसे में होता हो उसे बीस वर्ष का जीवन नष्ट करके किया, आखिर पानी ही पार होते हैं, तो पानी पार होने में ऐसी बात क्या है? नाव दो पैसे लेती है, न हो नाव तो आदमी तैर के पार हो जाए। पर नदी पर चल के जो आदमी पार होता है वह बीस वर्ष मेहनत कर सकता है, आप भी कर सकते हैं। नदी के पार होने का प्रयोजन ही नहीं है, पैर से पानी पर खड़े होकर पार होना, उससे आपका अहंकार खड़ा हो रहा है। नाव में बैठ कर अहंकार खड़ा नहीं हो सकता, तैरने से अहंकार खड़ा नहीं हो सकता, दो पैसे तो खर्च होते हैं। नदी ही पार होगी। यह जो आदमी नदी पार कर रहा है पानी की सतह पर चल कर इसका नदी पार करना तो प्रयोजन ही नहीं, यह अहंकार को मजबूत कर रहा है।

मंत्र शक्ति के स्त्रोत हैं और सभी धर्मों ने मत्र खोज लिए हैं, क्योंकि सभी धर्म शांति की तलाश से शक्ति की तलाश में पतित हो जाते हैं। महावीर तो शाँति खोजते हैं लेकिन जैन को शांति से क्या लेना देना? बुद्ध तो शून्यता खोजते हैं, अपने को मिटाते हैं, लेकिन बौद्धों को अपने को मिटाना नहीं बनाना है, बचाना, सुर-

क्षित करना है।

जिन व्यक्तियों के आसपास धर्म का जन्म होता है वे तो शून्य हो गए होते हैं लेकिन जो लोग आसपास इकट्ठे होते हैं वे शून्य होने के लिये इकट्ठे नहीं होते उनका रस कुछ और है, विपरीत है इसलिए धर्म जिन से जन्म पाता है और जिनके हाथों में पड़ता है, वे हमेशा शत्रु हैं, उन दोनों की आकांक्षाएं बिल्कुल भिन्न हैं। इस लिए सभी धर्म पतित हो जाते हैं। शक्ति की खोज धर्म को संसार का हिस्सा बना देती है। जैन हो, हिन्दू हो, बौद्ध हो, इस्लाम हो, कोई भी हो इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम्हें बड़ा रस आता है चमत्कार में और जब तक तुम्हें चमत्कार में रस आता है तब तक तुम जानना कि अभी तुम्हारी धर्म की जिज्ञासा जगी नहीं। कोई साधु, कोई संन्यासी, कोई बाबा हाथ से राख ही पैदा कर दे तो भी तुम आंदोलित हो जाते हो। राख का करोगे भी क्या, राख ऐसी ही सड़कों पर ढेर लगी पड़ी है, राख तो तुम घर में ही आग जला के पैदा कर लेते दो पैसे भी खर्च नहीं होते लेकिन किसी आदमी ने हाथ से पैदा कर दी तो तुम बहुत आंदोलित हो जाते हो, तो तुम बड़े प्रसन्न हो, तो आदमी के पीछे चल रहे हो। क्या होगा रस इस को समझना जरूरी है। यह तो तुम भी समझते हो कि राख पैदा करने से क्या होनेवाला है? लेकिन तुम कुछ और देख रहे हो इस राख में, तुम्हें यह आशा बंधी है कि जो आदमी हाथ से राख पैदा कर सकता है वह हीरे क्यों नहीं पैदा कर सकता? उसने राख पैदा करके तुम्हारी वासना को प्रज्वलित कर दिया है और जो आदमी राख पैदा कर सकता है वह तुम्हारी बीमारी दूर क्यों नहीं कर सकता। जो आदमी राख पैदा कर सकता है वह आदमी तुम्हें चुनाव में जितबा क्यों नहीं सकता? इसलिए दिल्ली में हर राजनीतिज्ञ का गुरु है! कोई महात्मा, कोई बाबा जो राख पैदा कर रहा है, जो ताबीज दे रहा है, चाहे राष्ट्रपति हो, चाहे प्रधान मंत्री हो, बाबा पर निर्भर रहना पड़ता है।

जिनकी भी वासना है वे चमत्कार पर निर्भर रहेंगे। मुल्क में करोड़पति हैं लेकिन हर करोड़पति किसी न किसी बाबा के चरणों में सिर रखता है। करोड़ भले ही हों उसके पास लेकिन अभी अरबों की आकांक्षा है। तुम चमत्कार को नमस्कार करते हो क्योंकि तुम्हारी वासना है, कुछ तुम पाना चाहते हो। चमत्कारी से भरोसा मिलता है, कि कुछ आशा बंधती है, इससे कुछ होगा! बीमारी है, नौकरी नहीं, व्यवसाय ठीक नहीं चलता है,

अदालत में मुकदमा है, हजार उपद्रव हैं आदमी के पास, मुश्किल हैं, कठिनाइयां हैं, आदमी दुःखी है। राख हाथ से गिरती देख कर उसे आशा बंधती है कि अगर बाबा प्रसन्न हों तो मेरे दुख भी विसर्जित हो सकते हैं और जैसे राख पैदा हो रही है ऐसे ही सुख की भी वर्षा हो सकती है। आज तक किसी दूसरे की कृपा से सुख की कोई वर्षा नहीं हुई। आज तक कभी किसी दूसरे के द्वारा आनन्द का कोई जन्म नहीं हुआ। सदियों का इतिहास इस बात का सबूत है—कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई भी आनन्द न दे सकेगा। लेकिन मन की भ्रांतियां हैं। मन सस्ते और सरल रास्ते खोजता है। यह चमत्कार है कि तुम मेरे पास सुनने आये हो। मैं इसे चमत्कार कहता हूं क्योंकि न यहां राख गिरेगी, न ताबीज बांटे जायेंगे, न तुम्हारी बीमारी को दूर करने का कोई भरोसा है, न तुम पद जीतोगे न धन, तुम्हारी कोई महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होगी फिर भी तुम आये हो इसे मैं चमत्कार कहता हूं। कोई भी कारण नहीं है तुम्हारा आने का मेरे पास क्योंकि तुम जो भी चाहते हो उसमें से कुछ भी मैं तुम्हें देने वाला नहीं, विपरीत तुम्हारे पास जो हो शायद वह भी मेरे पास आने से छिन जाये और अन्ततः तुम भी मिट जाओ। फिर भी तुम आये हो तो मैं मानता हूं कि तुम्हारी कोई धार्मिक जिज्ञासा है। तुम राख की तलाश में नहीं हो, न नदियों पर पैदल चलने की तुम्हें कोई विक्षिप्तता है, तुम वस्तुतः ही ऊब गये हो संसार से, तुम्हारी ऊब वास्तविक है, तुम्हारे संताप ने उस सीमा को छू लिया है, जहां तुम एक दूसरे ही आध्यात्म-लोक में प्रवेश करना चाहते हो, तुम इस सातत्य को तोड़ना चाहते हो जो अब तक चलता रहा है, तुम इससे छलांग लेना चाहते हो, तुम इसी का सिलसिला आगे जारी रखने को उत्सुक नहीं हो। इसलिए मैं तुम्हें कोई मंत्र नहीं देता, कोई मंत्र मेरे पास तुम्हें देने को है भी नहीं, क्योंकि मंत्र दिया जाता है वहां जहां तुम्हारी खोज किसी सिद्धी की है। मैं तुम्हारे मन को मजबूत न करूंगा, मैं तुम्हारे मन को मिटाऊंगा, काटूंगा और उस घड़ी की प्रतीक्षा करूंगा कि तुम मन को जैसे कोई प्याज को छीलता हो, छीलते जाओ, एक-एक पर्त प्याज की, तुम्हारे विचार की एक-एक पर्त गिरती जायेगी और एक दिन आयेगा कि प्याज की सारी परतें अलग हो जायेंगी कुछ भी हाथ में न बचेगा, शून्य बचेगा।

बुद्ध ने कहा है मन प्याज की गांठ की भांति है, बस, पर्त विचारों

की उघाड़ते जाओ, आखिर में मन भी न बचेगा, जैसे प्याज नहीं बचती और जब मन बिल्कुल नहीं बचता तब तुम अपने परिपूर्ण स्वप्न में प्रगट होते हो। तुम कैसे मिटो यही महा-मन्त्र है। एकाग्रता से तुम सघन होओगे, ध्यान से तुम मिटोगे, एकाग्रता तुम्हारी शक्तियों को एक जगह लगाती है, ध्यान तुम्हारी शक्तियों को परमात्मा में समर्पित करवाता है। तो परमात्मा को एकाग्रता का बिन्दु नहीं बनाना है, परमात्मा में समर्पित होना है। मन को एकाग्र नहीं करना है, परमात्मा में मन को खोना है यह बड़ी भिन्न बातें हैं। विलीन होना है, तल्लीन होना है, खो जाना है। ऐसी घड़ी आ जाये जब तुम्हें तुम्हारा पता न चले, ऐसी घड़ी आ जाये जब तुम खोजो भी अपने को तो न पा सको, तुम भीतर जाओ तो पाओ कि घर खाली है। तुम दर्पण के सामने खड़े हो, अपनी आंखों में तो पता चले भीतर कोई भी नहीं। जहां तुम विसर्जित हो वही निर्वाण है। इसलिए वस्तुतः धर्म ने कोई मन्त्र नहीं दिये हैं, पुरोहितों ने मन्त्र दिये हैं। तीर्थंकर मन्त्र नहीं देते, न अवतार मन्त्र देते हैं, पुरोहित मन्त्र देते हैं और पुरोहित से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। पुरोहित ही धर्म को नष्ट करता है क्योंकि पुरोहित धर्म को व्यवसाय के जगत का हिस्सा बना देता है। वह तुम्हारी आकांक्षाओं का सेवक है, तुम जो चाहते हो वह कैसे हो सकता है। वह तुम्हें आश्वासन देता है, तुम्हारी आशा को जगाये रखता है पर धर्म तो तभी शुरू होगा जब तुम्हारी सारी आशा गिर जायेगी, जब तुम्हारी निराशा परम होगी। एक किरण भी न बचेगी आशा की क्योंकि एक किरण बची तो तुम संसार में चलते ही रहोगे। अगर जरा-सा भी तुम्हें लगा कि कल कुछ हो सकता है तो तुम कल की प्रतीक्षा करोगे। तुम्हारा विषाद इतना सघन हो जाये कि कल पर से तुम्हारा भरोसा हट जाये। तुम्हारा संताप इतना गहरा हो कि कोई आशा पैदा न हो। जहां आशा नहीं, कल नहीं, वहां वासना के खड़े होने की जगह नहीं। क्योंकि वासना खड़ी होती है आशा से—और वासना खड़ी होती है कल में। आज तो जगह ही नहीं है और आने वाला कल, आने वाला जन्म, वहां आशा, वासना खड़ी होगी। समय का विस्तार वासना को खड़ा करने के लिए जगह बनाता है। इसलिए तुम कल में जीते हो, आज नहीं। फिर चाहे तुम मंत्रों का पाठ करो, चाहे मंदिरों, मस्जिदों में पूजा करो, प्रार्थना करो, लेकिन

तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं तुम्हारी वासनाओं की संततियां हैं, इसलिए सब झूठी हैं। जो प्रार्थना वासना का अनुसंग है वह झूठी है, तुम कुछ मांगते ही हो इसलिए प्रार्थना करते हो, यह प्रार्थना शब्द ही मांगने से बना है। तुम जाते हो मंदिर में लेकिन मांगते संसार हो। तुम्हारी मांग जब तक बनी है तुम कैसे प्रार्थना करोगे? जब तक तुम परमात्मा से कुछ मांग रहे हो तब तक एक बात पक्की है कि तुम परमात्मा को नहीं मांग रहे हो। तब तक परमात्मा से बड़ी कोई चीज ...यह बड़े आश्चर्य की बात है कि परमात्मा के सामने खड़े होकर तुम क्षुद्र चीजें मांग पाते हो, इसका अर्थ है कि परमात्मा से बड़ी हैं वह क्षुद्र चीजें।

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास जब विवेकानन्द आये तो उनका घर बड़ी दीन अवस्था में था। पिता चल बसे थे और पिता संसारी मनमोजी आदमी थे, तो बड़ा कर्ज छोड़ गये थे। घर में रोटी का भी इन्तजाम न था। किसी तरह रोटी जुटती भी तो मां और बेटे दोनों के लिए काफी नहीं होती थी। तो विवेकानन्द मां को कहते कि मुझे किसी मित्र ने निमंत्रण दिया है आज, ताकि मां रोटी खा ले। अन्यथा विवेकानन्द को खिला देती और खुद भूखी रह जाती, तो ऐसा कह कर आस-पास की गलियों में चक्कर लगा कर वहां से बड़े प्रसन्न डकार लेते लोटते थे। न किसी मित्र ने निमंत्रण दिया है लेकिन मां को दिखाने को कि भोजन कर आया हूं, बड़े प्रसन्न होकर, बड़ा अच्छा भोजन था ताकि मां भी बड़ी निश्चितता से भोजन कर ले। रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहा तू भी बड़ा मूर्ख है। यहां रोज काली के दरबार में उपस्थित होता है तो मांग क्यों नहीं लेता? इतनी छोटी-सी बात इसके लिए व्यर्थ कष्ट क्यों उठा रहा है? जब रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानन्द ने कहा आप कहते हैं तो मांग लूंगा। रामकृष्ण बाहर बैठे हैं मंदिर के, विवेकानन्द भीतर गये, बड़ी देर बाद वापस लौटे तो रामकृष्ण ने कहा कि पूछा, मां को कहा, तकलीफ बतायी। तो विवेकानन्द ने कहा, मैं भूल गया। रामकृष्ण ने कहा यह भी कोई भूलने की बात है? भूखा है तू, मां तेरी भूखी, घर मुसीबत में, पैसा चुकता नहीं, जरा कह दे, इशारे की बात है, सब हो जायेगा। तू जा वापस—फिर बड़ी देर के बाद विवेकानन्द आये, आंख से आंसू बह रहे हैं आनन्द के, रामकृष्ण ने कहा निश्चित तूने मांग लिया होगा, इसलिए प्रसन्न है।

विवेकानन्द ने कहा मैं फिर भूल गया। ऐसा तीन बार हुआ। फिर विवेकानन्द ने कहा कि नहीं, यह हो ही नहीं सकेगा, क्योंकि जब मैं मां के सामने जाता हूं तो मां ही दिखाई पड़ती है और सब भूल जाता हूं। मैं खुद को ही भूल जाता हूं, तो मेरी तकलीफें, मेरी मुसीबतें कहां टिकेंगी ? उनकी स्मृति कैसे रहे ? और यह असंभव मालूम पड़ता है। रामकृष्ण ने कहा कि इसलिए मैंने तुझे बार-बार भेजा है, यह तेरी परीक्षा थी कि मां के सामने अगर तू कुछ मांगने को राजी हो जाये तो उसका अर्थ है कि अभी प्राथना का कोई उपाय नहीं, फिर प्रार्थना हो नहीं हो सकती। मांगने वाला चित्त भिखारी का चित्त है, वह प्रार्थना क्या करेगा ? और परमात्मा से बड़ी चीजें हैं उसके सामने जिनको वह मांग रहा है।

जिसको परमात्मा ही चाहिए वह उसके सामने कुछ भी नहीं मांग सकता, वह परमात्मा को भी नहीं मांग सकता। इसे जरा समझें। क्योंकि अक्सर उसका दूसरा दृष्टिकोण ख्याल में आ जाता है कि हम कुछ चीजें न मांगेंगे। हम परमात्मा को ही मांगेंगे, लेकिन तुम तो उसमें भी मौजूद रहोगे और परमात्मा तुमसे छोटा और तुम बड़े। क्योंकि तुम उसे पा लोगे, वहां भी तुम्हारी संपदा बन जायेगी, उसे भी तुम अपनी मुट्ठी में ले लोगे, वह भी तुम्हारे परिग्रह का एक विस्तार होगा। तुमने जो राज्य बनाया उसमें तुम उसे भी एक जगह बैठा दोगे लेकिन तुम मालिक रहोगे। तो ध्यान रहे वस्तुएं तो कोई मांग नहीं सकता, संसार को कोई मांग ही नहीं सकता, परमात्मा के सामने। मांगता हो तो वह परमात्मा के सामने ही नहीं खड़ा है, उसे क्षुद्र अभी विराट से बड़ा है। व्यर्थ अभी उसे सार्थक है, प्रार्थना उसकी झूठी है, लेकिन परमात्मा को भी कोई नहीं मांग सकता। परमात्मा के सामने खड़े होकर मांग ही बन्द हो जाती है, मांगना ही व्यर्थ हो जाता है। मांगने वाला ही मौजूद नहीं रह जाता, इसलिए प्रार्थना कोई कृत्य नहीं है, आप प्रार्थना कर नहीं सकते, करने वाला नहीं रह जाता, प्रार्थना एक भावदशा है, विलीनता की एक अवस्था है, जहां करने वाला खो जाता है, वह जो आप सदा हैं, नहीं होते वही प्रार्थना है। तो मैं तो कोई मंत्र आपको दूंगा नहीं। और जब तक मैं मंत्र न दूं तब तक कोई धर्म मेरे आस-पास खड़ा नहीं हो सकता। अगर मंत्र दूं तो धर्म खड़ा हो सकता है, मंत्र आया तो पीछे से मंदिर आता है, मंदिर आया तो पुजारी,

पुरोहित आता है। तब सारा जाल फैल जाता है और सबके बीज में मंत्र है। मंत्र दिया कि मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया कि तुम्हारी खोज जायज है, तुम शक्ति को खोजो। मैं तुम्हें न दूंगा, न 'नमोकार', न 'ओंकार', न 'मणि पद्मे हूं', क्योंकि तुम खतरनाक हो और मंत्रों से तुमने केवल अपने अहंकार को सिद्ध किया है। मेरे पास तुम आये हो, अगर तुम्हारे पास कोई मंत्र हो तो तुम उसे छोड़ जाना। मंत्र से अपने को मत भरना क्योंकि मंत्र तुम्हारे मन का ही खेल है। सोचो, मन के बिना तुम कैसे मंत्र का पाठ करोगे ? मन न होगा तो कौन 'नमोकार' पढ़ेगा, तो 'नमोकार' विचार की ही एक प्रक्रिया हुई। कोई आदमी फिल्म का गीत गा रहा है क्योंकि उसकी वासना स्त्रियों में उलझी है, काम में उलझी है। वह जिस ऊर्जा से जिस मन से फिल्म का गीत गा रहा है उसी उर्जा से मंत्र भी पढ़ सकता है — अगर उसकी वासना धर्म में उलझ जाये तो मंत्र हो कि गीत हो, दोनों ही विचार के रूप हैं और मेरे लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन शुद्ध है और कौन अशुद्ध है, सभी विचार अशुद्ध हैं, विचार मात्र अशुद्धि है। शुद्ध विचार होता ही नहीं, शुद्ध विचार हो नहीं सकता, वैसे ही जैसे स्वस्थ को बीमारी नहीं हो सकती, बीमारी ही अस्वस्थता का नाम है, तो स्वस्थ बीमारी कैसे होगी ? शुद्ध गंदगी कैसे होगी ? या कि आप सोचते हों कि हो सकती है, विचार ही अशुद्धी है, विचार की तरंग होना ही चेतना को अशुद्ध करता है फिर वह विचार काम वासना का है कि प्रार्थना का है, मंत्र है कि दुकानदारी है इससे कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता।

चेतना में विचार का होना अशुद्धी है, शुद्ध विचार जैसी कोई चीज नहीं होती क्योंकि शुद्धी का अर्थ निर्विचारता है, शुद्धी का अर्थ ही विचार का अभाव है। आप ऐसा समझें कि आप दूध में पानी मिला देते हैं, बिलकुल शुद्ध पानी मिलाते हैं और शुद्ध ही दूध है। शुद्ध ही दूध है तो दोनों मिलकर दोहरी शुद्धी हो जानी चाहिये लेकिन दूध शुद्ध नहीं होता, पानी मिलकर अशुद्ध हो जाता है क्योंकि पानी का स्वभाव अलग, दूध का स्वभाव अलग। पानी कितना ही शुद्ध हो, शुद्ध होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। दूध में मिलने से अशुद्ध होगा और आप यह मत सोचना दूध हो अशुद्ध हुआ, पानी भी अशुद्ध हुआ। वह तो आपकी नजर दूध पर है इसलिए दूध अशुद्ध लग रहा है अन्यथा पानी ने भी अपनी शुद्धी खो दी और

दूध ने भी अपनी शुद्धी खो दी। दो शुद्ध चीजें मिली और दोनों अशुद्ध हो गयीं। विचार का अपना स्वभाव है, चेतना का अपना स्वभाव है। दोनों के स्वभाव अलग-अलग हैं, दोनों के मिलने से अशुद्धी होगी। विचार अपने में शुद्ध हैं, चेतना अपने में शुद्ध है। अपने में होना शुद्धी है, स्वभाव में होना शुद्धी है, विभाव अशुद्धी है। इसलिए कोई शुद्ध विचार चेतना को शुद्ध नहीं कर सकते। कोई शुद्ध पानी दूध को शुद्ध नहीं कर सकता। निर्विचार जब भीतर का आकाश होता है, जहां कोई बादल नहीं, मंत्र के भी बादल नहीं, तब परमात्मा प्रत्यक्ष है, तब आप उस निराकार के साथ एक हैं।

प्रश्नकर्ता

भगवान! आपके वचनों से ऐसा लगता है कि आध्यात्मिक साधना चाहे इस पार हो या उस पार—या तो हम अधर्म में हैं या धर्म में, बंधन में या मोक्ष में, रावण में या राम में, शायद बीच की कोई स्थिति नहीं है, यदि ऐसा है तो साधना और समर्पण में संबंध क्या?

भगवान श्री

निश्चय ही बीच की कोई स्थिति नहीं, हो भी नहीं सकती। इसे थोड़ा समझें क्योंकि कठिन है और मन को इससे बड़ी निराशा पैदा होती है कि बीच की कोई स्थिति नहीं है। मन बीच की स्थिति पैदा करता है, उससे भरोसा आता है कि हम राम भला न हों, लेकिन रावण भी नहीं हैं। आधे तक पहुंच गये हैं काफी यात्रा कर ली है, मोक्ष न मिला हो लेकिन संसार से हम छूट गये हैं, परम ज्ञान न हुआ हो लेकिन काफी ज्ञान हुआ है। बस, थोड़ी ही यात्रा और है लेकिन क्या ज्ञान बंट सकता है? कभी ऐसा हो सकता है कि आपको आधा ज्ञान हुआ हो? क्या आधा बुद्धत्व संभव है? और जो आदमी आधा बुद्ध हो गया तो वह बाकी आधी निर्बुद्धि को क्यों ढोयेगा? जिसके भीतर आधे में प्रकाश हो गया हो, क्या इस आधे प्रकाश में इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि वह आधे अन्धकार को मिटा दे? जिसकी वासना आधी चली गयी हो वह शेष आधी को कैसे बचायेगा? मगर मन की गहरी तरकीबों में एक तरकीब है कि वह आपको बताता है, कि विकास हो रहा है। इससे आशा बनी रहती है तो मन कहता है एक-एक सीढ़ी हम चढ़ रहे हैं, थोड़ी सीढ़ियां बाकी रही हैं, ऊंचाई में कुछ है नहीं, घबड़ाने की कोई बात नहीं। चिन्ता बनाओ मत, इतनी सीढ़ियां जब तुम

चढ़ चुके हो, थोड़ी सीढ़ियां और वह भी पार हो जायेंगी। मन सीढ़ियां पैदा करता है, जहां सीढ़ियां हैं ही नहीं। मन डिग्रोज बनाता है, जहां कोई डिग्री नहीं, जहां डिग्री हो हो नहीं सकती। या तो कोई आदमी ज्ञान में, तब अज्ञांन टिक नहीं सकता, रत्ती भर नहीं टिक सकता, आधे की तो बात अलग है। क्योंकि ज्ञान की मौजूदगी में अज्ञान टिकेगा कैसे? और या कोई आदमी अज्ञान में है और तब वह यह नहीं कह सकता कि रत्ती भर ज्ञान मुझे हुआ है क्योंकि रत्ती भर ज्ञान अज्ञान को नष्ट कर देगा। आपका पूरा घर अंधेरे से भरा हो, छोटा सा दिया जल जाये तो अंधेरा समाप्त हो जाता है तो पूरे घर को आग थोड़े ही लगानी पड़ेगी जब प्रकाश होगा, कि पूरे घर को आग लगायेंगे तब प्रकाश होगा। एक छोटा-सा दिया जला कि प्रकाश हो गया कि अन्धकार गया। प्रकाश की मौजूदगी अंधकार का अन्त है और अगर पूरे घर में अंधकार भरा है और सिर्फ थोड़ी सी जगह प्रकाश जल रहा है और दिया थोड़ा-सा प्रकाश करता है तो आप समझना कि वहां दिया कल्पित है। आप सोच रहे हैं कि यहाँ है, यह है नहीं। आप कोई सपना देख रहे हैं या यह दिया नहीं होगा। दिये की पेंटिंग होगी और चित्रकार दिये को पेंट कर सकता है तो देखने में लगे कि दिया रखा है और देखने में लगे कि ज्योति भी जली है और ज्योति के चारों तरफ प्रकाश भी पेंटिंग किया जा सकता है लेकिन उससे अंधेरा नहीं मिटेगा, यह दिया झूठा है। हमारा ज्ञान उस चित्रित दिये की भांति है, उसे हमने शास्त्रों से इकट्ठा किया है, वे चित्र हैं। उसे हमने संजो दिया है मन के एक कोने में, अन्धेरा अपनी जगह है, ज्ञान उसके बीच में बैठा हुआ है, जो ज्ञान अंधेरे को आमूल न मिटा देता हो, समझना कि वह उधार है। वह कहीं न कहीं मिथ्या और झूठा है। या तो रावण हो सकते हैं या राम। मध्य में होने का कोई उपाय नहीं। हमारे मन की तकलीफ यह है कि यह तो हम भी समझते हैं कि राम हम नहीं मगर यहां अहंकार को चोट होती है तो फिर रावण ही बचते हैं। वह मानने को मन राजी नहीं होता, मन कहता है माना कि राम नहीं है क्योंकि उतनी घोषणा करने की जरा मुश्किल मालुम पड़ती है, वह चारों तरफ लोग जानते हैं कि राम हम नहीं, किसके सामने घोषणा करेंगे लोग सिर्फ हसेंगे। तो राम तो हम अपने को नहीं कह पाते, कहना तो चाहते हैं, कह नहीं पाते। वास्तविक कठिनाइयां हैं, लेकिन रावण मानने

को भी मन नहीं होता। तो बीच का हम मार्ग खोज लेते हैं, हम कहते हैं, न हम राम हैं अभी न रावण हैं मध्य में हैं। अभी हम बीच में हैं, अभी परम ज्ञान नहीं हुआ। बुद्धत्व उपलब्ध नहीं हुआ। लेकिन हम मूढ़ और अज्ञानी भी नहीं हैं।

यह जो बीच का ख्याल है यह बहुत खतरनाक है क्योंकि यह तुम्हें तुम्हारी स्थिति से परिचित ही नहीं होने देगा, अच्छा है कि तुम समझ लो कि तुम रावण हो और रावण में खराबी क्या है? जिस वजह से तुम डरते हो? अगर रावण के व्यक्तित्व को समझो तो तुम पाओगे कि तुम मध्य में तो हो नहीं सकते, छोटे या बड़े रावण हो सकते हो। यह हो सकता है कि तुम छोटे रावण हो पर तुम्हारा ढंग और तुम्हारी चेतना का गुण, एक बूंद हो कि सागर, इस से क्या फर्क पड़ता है। सागर की एक बूंद भी खारी है, पूरा सागर भी खारा है। बुद्ध कहते हैं कि सागर की एक बूंद चख लो तुमने सारा सागर चख लिया। वैज्ञानिक कहते हैं कि तुम सागर की बूंद का विश्लेषण कर लो तुमने पूरे सागर का विश्लेषण कर लिया। जो एक बूंद में है वही पूरे सागर में है। सागर मेग्नीफाइड है, वह बूंद का ही विस्तार है। तो बूंद संकुचित है। बस उसी का संकोच है, तो यह हो सकता है तुम सागर न हो, बूंद हो पर तुम्हारा मूल गुण धर्म वही है। रावण की क्या कठिनाई है? रावण में वह क्या है जो तुम पाते हो तुम में नहीं है इसे जरा समझें। रावण धन का दीवाना है, साम्राज्य के विस्तार की आकांक्षा है, वासना ग्रस्त है, पंडित है बड़ा बड़ा शास्त्र का ज्ञाता है। रावण में यह जो गुण धर्म हैं इनमें से कौन सा है जो हम कोशिश करें तो अपने में न पायें, खोजें तो न पायें। स्त्री आकर्षित करती है। तुम्हारे लिए भी स्त्री में रस है। पर राम को किसी दूसरी स्त्री में कोई रस नहीं जैसे सीता में सारा संसार पूरा हो गया, यह राम की चेतना का हिस्सा है कि जो अपने पास है वह सब है, जो अपने पास है वह पूरा है, जो अपने पास है उसमें संतोष है उसमें संतुष्टि गहन है, उससे ज्यादा की कोई मांग नहीं। उससे ज्यादा दिखायी भी नहीं पड़ता। सब उसमें समाया हुआ है जैसे सारी दुनिया की स्त्री का स्त्रीत्व सीता में समा गया है। रावण की चेतना जब तक सारी स्त्रियां न मिल जायें तब तक तृप्ति नहीं होती और तब भी तृप्ति होगी कहना कठिन है। व्यक्ति का मूल्य रावण को नहीं, खुद के स्वार्थ और खुद की संवेदना का मूल्य है। जिसके पास हम रहते हैं

उसके प्रति हमारी संवेदना का मूल्य है। जिसके पास हम रहते हैं उसके प्रति हमारी संवेदना बोथली हो जाती है, रोज उसे देखते हैं फिर उसमें देखने योग्य कुछ नहीं बचता। रोज उसे खोजते हैं फिर खोजने योग्य कुछ नहीं बचता, फिर उसके पूरे व्यक्तित्व से हम परिचित हो जाते हैं तो सब बासा हो जाता है। यही सभी इंद्रियों का ढंग है। आज भोजन मिला, वही-कल भी मिला, आज का बहुत अच्छा है लेकिन कल उतना नहीं कह सकेंगे। वही भोजन फिर तीसरे दिन भी वही भोजन फिर मिला, तो ऊब पैदा हो गयी। चौथे दिन थाली सरका देंगे, वही है जो पहले दिन बहुत अच्छा था लेकिन चार दिन में ऊब गये। इंद्रियां पुराने से ऊबती हैं, इंद्रियों का ढंग है रोज नये की तलाश, क्योंकि इंद्रियों को उत्तेजना चाहिये और उत्तेजना नये से मिलती है। इसलिए जितने ऐन्द्रिक समाज होंगे नये की खोज उनका सूत्र होगा, जितने आध्यात्मिक समाज होंगे पुराने के साथ तृप्ति उनका स्वभाव होगा। चेतना तो सनातन की खोज करती है, इंद्रियां नवीन की। तो राम ने तो सीता में सनातन को खोज लिया, वह जो शाश्वत है, जो कभी पुराना नहीं पड़ता और जिसे नया होने की कोई जरूरत नहीं। जिससे ऊब कभी पैदा हो नहीं सकती, प्रेम से कभी ऊब पैदा नहीं होती काम से ऊब पैदा होती है क्योंकि प्रेम है हृदय का और काम है इन्द्रियों का। इसलिए अगर काम-वासना आपका केन्द्र है तो रोज आपको नयी स्त्री चाहिये, नया पुरुष चाहिये, नया भोजन चाहिये, रोज। क्योंकि शरीर प्रति-पल नये में जी सकता है, उसको उत्तेजना मिलती है, चुनौती मिलती है। लेकिन चेतना तो सनातन में जीती है, शाश्वत में जीती है, इसलिए प्रेम शाश्वत हो सकता है, राम और सीता के बीच तो प्रेम घटा है, रावण और उसकी पत्नियों के बीच काम-वासना के सम्बन्ध हैं। यही तो हमारी दशा है चेतना हमारी भी इसी तरह बह रही है, जो हमारे पास है वह बेकार और जो दूसरों के पास है वहां स्वर्ग, और जब तक मैं उसे न पा लूं तब तक बेचैनी और पाने ही से वह बेकार हो जाता है क्योंकि जैसे ही पा लिया वह मेरा हो गया, फिर नजर और पर जाने लगी। यह जो दूसरे पर जाती नजर है, सदा दुख लाती है और संतुष्टि का तो कोई आयाम उससे खुल नहीं सकता।

रावण धन के लिए दीवाना है इसलिए कहा है कि उसकी नगरी स्वर्ण की नगरी है, उसकी लंका सोने

की बनी है लेकिन फिर भी दूसरे का धन, दूसरे का राज्य आकर्षित करता है। रावण की लंका तो सोने की है, राम की अयोध्या सोने की नहीं, फिर भी राम को कोई रस दूसरे के राज्य में नहीं है, सोने का भी राज्य आपको मिल जाये तो भी जो दूसरे का है उसमें आपको रस रहेगा, महल भी आपके पास हो तो भी दूसरे का झोपड़ा आपको आकर्षित करेगा। राम जैसी चेतना का व्यक्ति अगर झोपड़े में भी रहे तो भी महल आकर्षित नहीं करता, राम जैसा व्यक्ति जहां भी रहे वही महल है, रावण जैसा व्यक्ति जहां भी रहे वहीं दुख है, वहां महल नहीं, महल कहीं और किसी के पास जिसको जीतना है। रावण के दस सिर हमने कहे हैं, अगर मनोवैज्ञानिकों से हम पूछे तो वे कहते हैं, हर आदमी के दस सिर हैं, क्योंकि आपको कई चेहरे तैयार रखने पड़ते हैं, सुबह से शाम तक कई दफे बदलने पड़ते हैं। आपके ख्याल में नहीं है क्योंकि आपको अपने मन का ठीक विश्लेषण ही नहीं है, जब आप अपने नौकर के सामने खड़े होते हैं तो आप अपने दूसरे चेहरे का उपयोग करते हैं, जब आप अपने मालिक के सामने खड़े होते हैं तो दूसरे चेहरे का उपयोग करते हैं। इसे थोड़ा ख्याल करेंगे तो आप पायेंगे कि तत्क्षण आप चेहरा बदलते हैं, जैसे कई चेहरे तैयार हैं, जिनको आप तत्क्षण बाद बदल लेते हैं, अगर किसी आदमी से काम लेना हो तो आप और चेहरे का उपयोग करते हैं और अगर कोई आदमी आपसे काम लेने आया हो तब आपका चेहरा देखिये! जब आपको किसी से रुपये उधार लेने हैं तब आप अपना चेहरा आइने में देखिये, और जब कोई आपसे रुपये उधार लेने आया है तब अपने चेहरे को आइने में देखिये। आप पायेंगे अलग आदमियों के चेहरे हैं, यह एक ही आदमी का चेहरा नहीं। दस का मतलब आप दस मत समझ लेना, दस तो आखिरी संख्या है इसलिए दस, चेहरे तो हजार हैं, दस आखिरी संख्या है, बाकी संख्या तो फिर पुनरुक्ति है। इसलिए सभी संख्याओं में, दुनिया भर की संख्याओं में, दस पर संख्या का अन्त हो जाता है। ग्यारह का मतलब फिर एक के ऊपर एक, फिर पुरानी संख्या दुहराने लगी। बारह का मतलब एक के ऊपर दो, लेकिन दस पर काम पूरा हो गया और दस में पूरा हो गया, क्योंकि आदमी की दस उंगलियां हैं, आदमी ने पहले उंगलियों पर गिनना शुरू किया, दस पर संख्या पूरी हो गयी। फिर वह दस को ही बढ़ाता रहा है। तो वह जो रावण के दस

चेहरे हैं वह तो सिर्फ संख्या का अंत बताने के लिए है. चेहरों का कोई अन्त नहीं है, सुबह से शाम तक हजारों चेहरे आप बदल रहे हैं।

राम का एक ही चेहरा है, चाहे सुख में मिले, चाहे दुख में, चाहे उनको आप राजमहल में मिलते, और चाहे जंगल में। उनके चेहरे में भेद नहीं है और जिस आदमी ने एक चेहरा पा लिया वह राम हो गया। इसका अर्थ है जिसका चेहरा आथेन्टिक हो गया—प्रमाणिक हो गया, जिसका चेहरा भीतरी हो गया जो बाहर को देखकर अब चेहरे को नहीं बदलता। परिस्थिति जिस पर अब प्रभावी नहीं, जिसका चेहरा अब एक आन्तरिक दशा और स्थिति है, आप उसको गाली दें तो भी उसका चेहरा वही है। प्रशंसा करें तो भी चेहरा वही है, अब कोई परिस्थिति उसके चेहरे को डांवडोल नहीं करती। उसका होना थिर हो गया है, राम इस थिरता के नाम हैं, रावण को मारना मुश्किल हुआ युद्ध में क्योंकि एक गर्दन काटो उससे क्या फर्क पड़ता है? असली गर्दन का तो कोई पता ही नहीं है जिसके काटने से रावण मरेगा और झूठा चेहरा एक गिरा कि दूसरा उग आता है। झूठे चेहरे काटने से कुछ हल नहीं है क्योंकि वह कोई चेहरा ही नहीं है। इसलिये रावण के सिर गिरते जाते हैं और नये उगते आते हैं। आपके झूठे चेहरे को कोई काट भी दे, क्या फर्क पड़ता है। न वहां रक्त है, न मांस है न कुछ है, वह तो सिर्फ एक ख्याल था, एक भाव था, वह काट दिया गया आप दूसरा तत्क्षण पैदा कर देंगे। रावण को मारने की भी कठिनाई यही थी कि उसके असली चेहरे का पता लगाना ही सूत्र था। असली चेहरा कौन सा है। और आप भी अपने को न मिटा पायेंगे परमात्मा के सामने, राम के सामने रावण ऐसे ही खड़ा था जैसे आप भी परमात्मा के सामने खड़े हैं। आपको अपने खुद का पता नहीं कि आपका असली चेहरा कौन सा है जिसको काटने से आप मिट जायेंगे। कई बार आप झूठे चेहरे काट कर चढ़ा आते हैं मंदिर में और घर लौट आते हैं वह झूठे चेहरे हैं। उनके काटने से कुछ हल नहीं होगा। देखें मंदिर में एक आदमी जाता है सिर झुकाकर चरणों में रख देता है परमात्मा के सामने लेकिन अगर आप गौर से देखें तो उसकी अकड़ तो वहां वैसी की वैसी खड़ी है, असली चेहरा खड़ा ही हुआ है, नकली चेहरा झुका हुआ है और असली चेहरा चारों तरफ देख रहा है कि देख लो मेरे जैसा भक्त इस गांव में कोई भी

नहीं।

मैंने सुना है एक सम्राट सुबह-सुबह चर्च में प्रार्थना कर रहा था और सम्राट था और पर्व का एक दिन था इसलिए पहला हक उसी का था जैसा हरिद्वार में या गंगा पर स्नान के वक्त पहला हक कौन स्नान करेगा, धर्म के जगत में भी पहले का हक करने वाले लोग हैं, यह अहंकारी हैं। दंगा-फिसाद हो जाता है कुम्भ के मेले में क्योंकि जिसका हक था उससे पहले किसी ने स्नान कर लिया तो वहीं मार-पीट शुरू हो जायेगी। भगवान के दरवाजे पर भी आप इतने आसानी से घुस पाओगे वहां लट्ठ लिये लोग खड़े होंगे कि हमारा हक पहले। तुम पहले कैसे जा रहे हो? वह सम्राट था, उस चर्च में पहला उसका हक था पर्व के दिन, तो अंधेरे में सुबह पांच बजे प्रार्थना करता था क्योंकि फिर लोग आना शुरू हो जाते, भगवान से पहली मुलाकात उसकी होनी चाहिये। तो वह प्रार्थना कर रहा था और अंधेरे में कह रहा था, हे परमपिता! मैं ना कुछ हूं, मैं दीन दरिद्र हूं, पापी हूं, मुझे अपने चरणों में समा ले। तभी उसे लगा कि कोई और अन्धेरे में मौजूद है। अन्धेरे में दिखाई तो ठीक से नहीं पड़ता, तो उसने कान सजग किये। पास में ही कोई आदमी वेदी के पास झुका था और यही शब्द दोहरा रहा था कि हे परमात्मा! मैं ना कुछ हूं, दीन-दरिद्र तेरे पैरों की धूल, मुझे अपने चरणों में समा ले। सम्राट ने कहा कि यह कौन आदमी सामने कहने का दावा कर रहा कि मैं ना कुछ हूं, मुझसे ज्यादा ना कुछ दूसरा कोई भी नहीं हो सकता। यह कौन है जो कह रहा है कि मैं दीन दरिद्र हूं? जब मैं कह चुका तो मुझ से ज्यादा दीन दरिद्र कोई भी नहीं हो सकता, अपने शब्द वापस ले ले अगर सम्राट कह रहा हो कि मैं निराहंकारी हूं तो आप यह नहीं कह सकते कि आप भी निराहंकारी हैं क्योंकि सम्राट का अहंकार खड़ा हुआ, वह कहेगा, मुझसे ज्यादा निरअहंकारी होने का दावा? वह चाहे धन का हो चाहे निरअहंकारिता का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन मुझसे ज्यादा तुम नहीं हो सकते। दीन-दरिद्र तो मैं, प्रथम ना कुछ तो मैं प्रथम लेकिन मेरा प्रथमपन जारी रहेगा। तो तुम झुक जाते हो मंदिर में लेकिन तुम्हारा अहंकार तो खड़ा रहता है, तुम्हारा सिर झुकता है जो झूठा है, जिसका कोई मूल्य नहीं। रावण के मन को अगर समझें तो आप अपने भीतर रावण को पूरी तरह प्रतिष्ठित पायेंगे और वही रावण आपको समझा रहा है कि

भगवान तुम भला न हो लेकिन रावण नहीं हो। उसकी बिल्कुल मत सुनो, उसकी काफी सुन चुके हैं, उस की सुनने के कारण ही यह दुर्दशा है। अगर आपको लगता है कि राम मैं नहीं हूं तो पक्का जानें कि आप रावण हैं। यह पक्का जानना राम की तरफ जाने का पहला कदम होगा। अपने को बुरा जानना शुभ होने की पहली क्रांतिकारी घटना है। मैं अन्धेरे में हूं ऐसी गहन प्रतीति प्रकाश की खोज बनती है, मैं अज्ञानी हूं तो ज्ञान की जिज्ञासा शुरू होती है। मध्य और आधे की बात मत सोचें, या इस पार या उस पार। और जो इस पार से छूटता है वह तत्क्षण उस पार हो जाता है। क्योंकि दोनों के बीच में जरा भी जगह नहीं है, जहां आप खड़े हो सकें। ज्ञान और अज्ञान के बीच जरा-सी भी जगह नहीं जहां आप खड़े हो सकें, जहां अज्ञान गया कि ज्ञान आया, यह घटना युग पथ हैं। जैसे सौ डिग्री पानी गरम हुआ। फिर भाफ और पानी के बीच में जरा सी भी जगह नहीं है कि पानी का कुछ हिस्सा बीच में रुक जाये और कहे हम पानी तो न रहे लेकिन भाप, नहीं हैं। बीच में है ना, या पानी या भाप, इन दोनों के बीच कोई भी जगह नहीं है। वह जो दूसरा किनारा है और यह किनारा इन दोनों के बीच मैं कोई नदी नहीं बह रही है जिसमें आप मध्य में अपनी नाव टेक दें, नदी वहां है ही नहीं। बस, दो किनारे हैं, यह किनारा छूटा कि दूसरा किनारा मिला और जब तक दूसरा न मिला हो तब तक आप इस किनारे पर हैं। इसे बहुत गहन रूप से अनुभव करना है। मन के धोखे में मत पड़ना, या तो अंधकार या प्रकाश, या तो जीवन या मृत्यु, अधमरा आदमी भी अधमरा नहीं होता। हम कहते ही हैं, जिन्दा होना है, पूरा जिन्दा होना है, अधमरा कैसे कोई हो सकता है। यह भाषा की भूल है, आधा जिन्दा कोई कैसे हो सकता है? एक आदमी बिल्कुल बेहोश भी पड़ा हो तो भी जिन्दा है पूरा, जिन्दा है, सौ प्रतिशत जिन्दा है। आधा मर गया है ऐसा नहीं कह सकते। और एक आदमी मर गया तो आप यह नहीं कह सकते कि आधा जिन्दा है। मर गया तो मर गया, जिन्दा है तो जिन्दा है। इन दो किनारों के बीच कोई भी जगह नहीं, कोई रिक्तता नहीं है। ठीक से अपना विचार करें और रावण को आप छिपा हुआ पायेंगे और ठीक-ठीक आप अनुभव कर लें कि मैं रावण हूं। वही रावण की भूल थी क्योंकि रावण अपने को रावण नहीं समझता था, समझता था महापंडित, ज्ञानी। शास्त्र उसे कंठस्थ थे, शक्तिशाली भी

कम नहीं था क्योंकि अज्ञानी सदा शक्ति की तलाश करता है। बड़ी सिद्धियां उसने इकट्ठी कर रखी थीं, और सिद्धियां इकट्ठी करने के लिए अज्ञानी कुछ भी करने को राजी होता है। इसलिए कहा है कि वह अपनी गर्दन को काट कर शिव के सामने चढ़ा देता। इस सीमा तक जा सकता है अज्ञानी, सब कुछ छोड़ने को राजी है—अहंकार भर उसका मजबूत होता चला जाये। मरने तक को राजी है अहंकार अगर बचता हो, तो सिद्धि की तलाश भी उसके मन्त्रों की साधना थी उसकी, बड़ा साधक था। रावण के जीवन में हमें खबर है, उसने बड़ी साधना की; बड़ी सिद्धियां पायीं। आखिर शिव को उसने प्रसन्न कर लिया और वह परम शक्ति का मालिक हो गया। ज्ञान भी उसके पास था पांडित्य उसके पास था, सब कुछ उसके पास था। इसलिए स्वाभ विक है कि वह सोचता हो कि वह परम शक्तिशाली है। भगवान से भी आगे। अतः जब तक आपको यह ख्याल न आ जाए कि रावण हैं आप तब तक आपकी वास्तविक जीवन क्रांति की ओर कदम नहीं उठता और जैसे ही यह ख्याल आ जाए रावण मैं हूं, महल रावण का गिरना शुरू हो गया क्योंकि कोई भी व्यक्ति सचेत होकर रावण नहीं हो सकता। जानते हुए कि रावण मैं हूं, कोई रावण नहीं हो सकता। जानते हुए कि बुरा मैं हूं, बुराई नहीं टिक सकती। क्योंकि यह जानना एक आग है जिसमें बुराई जल जाती है। राख हो जाती है। अगर बुराई को बचाना है तो यह जानना जरूरी है कि मैं बुरा नहीं हूं। भला कहना मुश्किल हो तो इतना तो कहूं कि और लोगों से कम बुरा हूं। भलाई की तरफ चल रहा हूं।

एक आदमी मरा। उस गांव का रिवाज था कि जब कोई मर जाये तो उसकी प्रशंसा में कुछ कहा जाए और जब तक उसकी प्रशसा में कुछ न कहा जाए तब तक उसका अग्नि संस्कार नहीं किया जा सकता। और वह आदमी इतना बुरा था कि गांव भर के लोगों ने बहुत सोचा लेकिन कुछ भी खोज न पाए कि प्रशंसा में क्या कहें। उस जैसा दुष्ट खोजना मुश्किल था। उपद्रवी ऐसा था कि बिना कारण उपद्रव खड़ा करे, पूरा गांव उससे त्रस्त था और सभी प्रसन्न थे उसकी मृत्यु पर न केवल गांव के लोग, उसके घर-परिवार के लोग भी आनंदित और आह्लादित थे कि झंझट मिटी, क्योंकि वह आदमी झंझटी था और सुबह से शाम तक किसी न किसी

को किसी झंझट में डाले रखता था। पूरे गांव को उसने अदालत के चक्कर लगवा दिये थे और उससे रास्ते पर नमस्कार करना भी खतरनाक था। उससे कोई भी सम्बन्ध बनाना उपद्रव की बात थी क्योंकि उतने में ही वह कुछ जाल खड़ा कर दे। मरघट पर उसकी लाश रखे बैठे हैं और कोई उठकर खड़ा नहीं होता कि प्रशंसा में कुछ कहे लेकिन गांव का पुराना रिवाज कि जब तक प्रशंसा में कोई कुछ न कहे तब तक आग न दी जाये। फिर सांझ होने लगी, गांव परेशान है आखिर गांव के लोगों को लगा कि यह मर कर भी सता रहा है, अब इसको कैसे जलायें। और जब तक इसको जलाओ न तो गांव कैसे जायें, रात उतरने के करीब है, अभी करना क्या है? फिर एक आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा कि यह आदमी अपने चार भाइयों की तुलना में देवता था उसके चार भाई और हैं गांव में, वे इससे भी ज्यादा उपद्रवी हैं और दुष्ट, अपने चार भाइयों की तुलना में यह आदमी देवता था! अग्नि संस्कार करके लोग घर लौट आये। आप भी अपने को समझाये रखते हैं कि औरों की तुलना में देवता हूं! इतने बुरे लोग हैं संसार में, मैं इतना बुरा नहीं। बुद्ध जैसा भला नहीं, राम जैसा भला नहीं, रावण जैसा बुरा भी नहीं हूं। और पृथ्वी रावणों से भरी है, मैं मध्य में हूं। मध्य में कोई भी नहीं है, कोई भी हो नहीं सकता। मध्य की भ्रान्ति को छोड़ दें तो क्रान्ति शुरू हो सकती है।

आगे बढ़ो !

साधको संन्यासिओ ! उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

गेरुए परिधान में ही, धर्म के अभियान में ही
रूढ़ियों को ध्वस्त करके, मार्ग को प्रशस्त कर लो
उल्लसित हर्षित मुखामा ले चलो आगे बढ़ो
साधको संन्यासिओ उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

यद्यपि जगत में निरा तम है, फिर भी तुम्हारा स्वागतम है
मृत्यु की श्यामल घटा में भी किरण पाती जनम है
सत्य-पथ के यात्रिओ ! हो अग्रसर पग पग बढ़ो
संन्यासिनी संन्यासिओ उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

गुरुद्वारों में गीत गाओ, चर्च में वीणा बजाओ
मंदिरों में झूम नाचो, मस्जिदों में ध्यान करलो
भगवान श्री के फकीरो ! अलमस्त हो आगे बढ़ो
साधको संन्यासिओ उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

कृष्ण की जय, बुद्ध की जय, मुहम्मद औ यीशु की जय
भगवान श्री रजनीश की जयकार कर आगे बढ़ो
भगवान श्री के सूफियो ! हर आत्मा झंकार दो
साधको संन्यासिओ उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

प्रति देश में प्रति प्रांत में प्रति नगर में प्रति ग्राम में
हर द्वार में हर ठांव में हर खास में हर आम में
भगवान श्री के भिक्षुओ ! नवचेतना जाग्रत करो
साधको संन्यासिओ उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

ध्यान के अधर्म का, धर्म के भी मर्म का
भगवान श्री रजनीश का संदेश फैलाते चलो
भगवान श्री के गोपियो ! आनन्द बिखराते चलो
साधको संन्यासिओ ! उत्तिष्ठ हो आगे बढ़ो ।

□ अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'
घंसोर, सिवनी (म. प्र.)

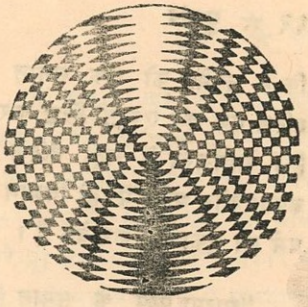

आधुनिक युग के वैज्ञानिक-ऋषि : भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री के अनन्त आयामी दिव्य व्यक्तित्व का एक विलक्षण पहलू यह भी है, "जीवन और धर्म के प्रति उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण" जो उनके मधु प्रवचनों की वैज्ञानिक शैली में सदा मुखर हो उठता है। विलक्षण इस अर्थ में क्योंकि बहुधा अधिकांश धार्मिक व्यक्ति या तो विज्ञान का विरोध करते हैं या अधिक से अधिक किसी असमर्थता में धर्म और विज्ञान का असफल सामंजस्य करते प्रतीत होते हैं।

भगवान श्री धर्म और विज्ञान के बीच न तो विरोध पाते हैं और न उनका सामंजस्य ही चाहते हैं। वे चाहते हैं दोनों का संगम। "मैं विज्ञान और धर्म में सम्मिलन को चाहता हूं"।

(साधना पथ)

□ अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'
घंसोर, सिवनी (म.प्र.)

भगवान श्री की विज्ञान संबंधी स्वीकारोक्तियां उस प्रकार की नहीं हैं जैसी अन्यत्र पाई जाती हैं जहां साधक को उपमेय और वैज्ञानिक उपलब्धियों को उपमान बनाकर दृष्टांत दिए जाते हैं। अन्य सभी धार्मिक पत्रिकाएं पढ़ते समय मुझे सदा यही कठिनाई होती है कि अब अधिकांश विद्वान उपमाएं देकर साधक उपमेय को साध्य उपमान के समान सिद्ध करने का हठाग्रह करते हैं तो ऐसी स्थिति में किसी कवि हृदय को भले ही आनंद मिले पर जिज्ञासु तर्क बुद्धि को संतोष नहीं मिलता यह संदेह सदा बना रहता है कि उपमेय और उपमान कदाचित समान नहीं भी होंगे। वास्तव में ऐसे दृष्टांत कल्पना वाकपटुता व बुद्धिचातुर्य के परिणाम हैं न कि तत्वदर्शी प्रमाण।

भगवान श्री की यह विशेषता है

कि वे उपमेय को एक समान नहीं बल्कि एक रूप एक ही सिद्ध कर देते हैं। सामंजस्य में नहीं बल्कि एक रूपता और अद्वैत में ही विज्ञान और धर्म को एकाकार कर देते हैं।

"आत्मा पुष्प के समान सुंदर है" ऐसी अलंकारिक उक्ति उनकी नहीं है—वे तो कहते हैं "जब फूल को देखते तो फूल ही बन जाओ। आकाश के साथ आकाश हो जाओ। अपने को अलग न रखो...फिर वह जाना जाता है जो कि सत्य है।"

वे फूल जैसा बन जाने को नहीं कहते क्योंकि आदर्श या उपमा अपने को अलग रखकर ही प्रस्तुत की जा सकती है और इससे अनिवार्य रूपेण द्वैत का जन्म होता है। वे कहीं भी आदर्श के समर्थक नहीं हैं, बल्कि उनकी यात्रा तर्क से प्रयोग की ओर चल कर अनंत गुह्य रहस्य के उद्घाटन में ही चरम परिणति पाती है, एक पूर्ण वैज्ञानिक की तरह। रहस्य में खो नहीं जाती।

यद्यपि उनके तर्क अकाट्य हैं फिर भी वे सत्य को तर्क की अपेक्षा प्रयोग की कसौटी पर कसने के समर्थक हैं। यद्यपि वे रहस्य के परम ज्ञाता हैं परन्तु हमारे तल पर हमसे बातें करते हुए वे इस प्रकार पूर्ण वैज्ञानिक बन जाते हैं।

उनके गूढ़ प्रवचनों में आइंसटीन की तरह का सापेक्षवाद भरा पड़ा है। दिन और रात, प्रकाश और अंधकार, जड़ और चेतन आदि परस्पर विरोधाभासी तत्वों को भी वे भिन्न नहीं मात्र परिमाणिक (क्वांटिटेटिव्ह) सापेक्ष्य में देखते हैं।

जन्म और मृत्यु तथा शरीर व आत्मा को जब स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि के अंतर के सापेक्ष्य में वे एक रूप देखते हैं और दृष्टि की ग्यारहवीं दिशा (अंतरदिशा) के रूप में नए आयाम की सूचना देते हैं तब ऐसा लगता है जैसे आइंसटीन और महावीर की प्रतिभाओं का उनके दिव्य व्यक्तित्व में संगम हो गया है।

इस प्रसंग में मुझे विवश होकर उनकी अतुलनीय वैज्ञानिक प्रतिभा की तुलना करनी है।

आइंसटीन यदि पदार्थ और शक्ति की एकता के सूत्र का आविष्कारक है तो भगवानश्री पदार्थ शक्ति चेतना, सृष्टि व सृष्टा समस्त की एकता का दर्शन कराते हैं।

आइंसटीन प्रकाश की गति पर गतिमान दृष्टा (आब्जर्व्हर) की आयु पर समय का क्षीण प्रभाव

मानता है। तो भगवान श्री प्रकाश की गति से तीव्रतर विचार मात्र को निर्मूल कर निर्विचार की स्थिरता में, चेतना की तीक्ष्णतम किन्तु गति-शून्य अवस्था में दृष्टा को अपनी अमरता का दर्शन कराते हैं। और कालविजयी बना देते हैं।

आइंसटीन जब चौथे आयाम स्पेसियोटाइम की बात करता है क्योंकि समय को स्पेस के सापेक्ष मानकर दोनों को एकरूप देखता है तब भगवान श्री कहते हैं—

"चेतना की गति भी समय में है। चित्त की सारी गति ठहर जाय इसका नाम ध्यान है।"

(महावीर वाणी)

इस प्रकार जो चौथा भौतिक आयाम 'समय' है यदि भगवान श्री के कहे अनुसार ध्यान के प्रयोग करें—समय में ठहर सकें तो काल से परे हो सकते हैं। इस प्रकार वे अपने सभी मधु-प्रवचनों में आध्यात्म और जीवन की समग्रता में वैज्ञानिक आविष्कारों को एकाकार कर रहे हैं। आधुनिकतम वैज्ञानिक उपलब्धियों और आध्यात्मिक प्रयोगों का ऐसा निराला संगम, ऐसी अनुपम एक-रूपता अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई पड़ती।

उन कालविजयी परम वैज्ञानिक भगवान श्री को शत्-शत् नमन्।

● मेरा सन्देश छोटा-सा है—"प्रेम करो। सबको प्रेम करो। और ध्यान रहे कि इससे बड़ा कोई भी सन्देश न है, न हो सकता है।" ●

—भगवान रजनीश

प्रभु घर आओ रे !

(राग : हो गई आधी रात अब घर...)

जब हो गई पूर्ण प्रभात प्रभु घर आओ रे।
जब हो गये पूरण आप प्रभु घर आओ रे।

जन-जीवन का हे श्वास प्रभु
आलोक में तू ही प्रकाश प्रभु
अब गुजर गई है रात...प्रभु घर आओ रे।

बुद्ध ईसा महावीर के साथी
सिद्ध हुआ सबके संगाथी
मैं नाचूं तेरी याद...प्रभु घर आओ रे।

तू जगदीशा तू अरिहंता
तू अ धूता तू रजनीशा
अब तू ही नियंता देव...प्रभु घर आओ रे।

जन्म जन्म से भटक रहा मैं,
दीनहीन कंपित जिया में,
अब ऊब गया भगवान...प्रभु घर आओ रे।

भटकत भटकत अनंत भटका
काम क्रोध मद मोह में अटका
अब हो गई नींद हराम...प्रभु घर आओ रे।

आवागमन मिटा दो प्रभु
अब तड़पन तेज भई ये विभू
मिट जाने की एक प्यास...प्रभु घर आओ रे।

मैं मूरख और क्षुद्र कीटाणु
तू विराट प्रभु पूरण जानूं
किस विधि करुं गुणगान...प्रभु घर आओ रे।

□ *साध्वी प्रेमदास*
माटुंगा, बम्बई

भगवान श्री और मैं

प्रत्येक प्रेमी जिज्ञासु साधक की अपनी आध्यात्मिक यात्रा है जिन्हें पूज्य भगवान से आध्यात्म दिशा मिली है। इस क्रम में पिछले अंक में श्री एन० जी० वखारिया का एक आत्म-विश्लेषण आपने पढ़ा—उसी क्रम में एक और अभिव्यक्ति, जिसे प्रस्तुत कर रहे हैं—श्री गोपाल कृष्ण अग्रवाल, दारूका मार्केट, दुमका (संथाल परगना, बिहार)।

□ गोपाल कृष्ण अग्रवाल
दुमका (बिहार)

सर्वप्रथम जब मेरा साक्षात्कार स्वामी विमुक्त वीतराग से हुआ था—तो मुझे कौतुहल सा हुआ और कई तरह के प्रश्न भी मैंने किये। उत्तर के रूप में हमारे प्रिय मित्र स्वामी कृष्ण वेदान्त जो उनके साथ ही आए थे, कुछ पुस्तकें दी जिसे पढ़कर मेरे हृदय में कई धारणायें बनती गईं, मिटती गईं। मैं उनकी पुस्तकें एक के बाद एक पढ़ते ही गया और मित्रों से सत्संग भी होता रहा। भगवान श्री की गीता, उपनिषद्, ताओ उपनिषद्, मैं कहता, आंखन देखी अन्तर्यात्रा, मैं मृत्यु सिखाता हूं, महावीर की पुस्तकें, और फिर अन्त में कृष्ण मेरी दृष्टि में। अब तक कम से कम ७० पुस्तकें मेरे मानस पर छाई हुई हैं।

बहुत प्रेमीगण आते ही रहते हैं। कई विद्वान तो मुझे यहां तक कह गये "इनकी पुस्तक न पढ़ें, माथा खराब हो जायेगा।" किसी ने तो यहां तक कहा था "धर्म और संस्कृति अब बचनी मुश्किल है." मैं उन्हें कहता आप बिलकुल ठीक बोलते हैं, परन्तु फिर दूसरे दिन मुझे पढ़ते देख कर पूछते फिर आप पढ़ ही रहे हैं। तब मैं कहता अब मैं पढ़ नहीं रहा हूं—बल्कि यह देखना चाहता हूं कि इन पुस्तकों में कितनी असंगतियां हैं। असंगति का चरम बिन्दु बिना प्राप्त किए मैं दूसरों को कैसे कह सकता हूं "तुम मत पढ़ना।"

अभी भी मेरे सम्बन्ध में चर्चा चलती है। यह रात दिन पढ़ता ही रहता है, रोजगार भी समाप्त हो जायेगा। परन्तु उन मित्रों के विचारों को हस्तक्षेप करना आचार्य श्री के अनुसार भी अनाधिकार प्रवेश (ट्रेस-पास) है। परन्तु जो मित्र जानना ही चाहते हैं—उन्हें मैं कैसे रोक सकता हूं। उन मित्रों को मेरा सन्देश प्रकाशित करता हूं।

आज तक ब्रम्हसाक्षातकारी, ब्रम्हवेता विद्वान ने उस महाशून्य में प्रवेश करने के बाद लौटकर कोई सन्देश नहीं दिये। क्योंकि उसमें प्रवेश मार्ग तो है परन्तु निर्गत मार्ग नहीं है।

निर्गत मार्ग नहीं है, यह पता इसलिए चलता है कि अब तक वहां से लौटकर कोई नहीं आया। इस दस हजार वर्ष के इतिहास में बहुत महापुरुष हुए, परन्तु किसी योगी या ब्रम्ह वेत्ता ने उस परम शून्य से बाहर आकर कोई प्रति वेदन प्रस्तुत नहीं किया।

अतः अनुमान हो गया कि हजारों वर्षों में भी कोई ब्रम्हवेत्ता विद्वान उस महाशून्य के निर्गत द्वार से बाहर नहीं आया। इसलिये यह धारणा बिल्कुल पक्की हो गई कि कोई निर्गत द्वार उस महाशून्य में नहीं है। यह धारणा बिल्कुल पक्की है—परन्तु प्रमाणिक नहीं। क्योंकि किसी ने लौटकर नहीं कहा था निर्गत द्वार नहीं है।

उस परम शून्य से लौटकर वापस आना करीब-करीब संभव नहीं, असंभव सा है परन्तु असम्भव नहीं है। क्योंकि अभी तक इतना कीमती आदमी और मूल्यवान व्यक्ति नहीं हुआ जो उस शाश्वत को त्याग कर, परमानन्द को त्याग कर वापस आना चाहे, उतना ऊंचा त्यागी एवं करुणावान व्यक्ति पैदा नहीं हुआ, इसलिए भगवान की जो टाइटिल है वह मानव अस्तित्व के साम्राज्य की (1or the kingdom of human existence) सर्वोत्कृष्ट उपाधि है। उपनिषदों में कहा गया 'न आगच्छति, न आगच्छति।' लौटता नहीं, लौटा नहीं।

भगवान श्री कृष्ण ने बहुआयामों को छुआ और सम्पूर्ण कला को त्याग महा शून्य में लीन हो गये फिर लौटे नहीं, और शाश्वत में खो गये।

परन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट दिखता है कि श्री रजनीश जी का एक ऐसा बहुआयामी चरित्र है, जो प्रत्यक्ष बहुआयामी गुण लेकर उस महाशून्य के निर्गत द्वार से महा करुणावश आया है, मानव जगत की दरिद्रता, कुव्यवस्था, प्राणी की अनन्त संभावनाओं का दिग्दर्शन कराने की करुणा का समावेश प्रत्यक्ष है। इसलिये भविष्य के लिए वे महा द्रष्टा होंगे ही इसमें दो मत नहीं हो सकते।

इनके प्रश्नों का उत्तर पढ़कर घोर नास्तिक भी निरुत्तर हो जाते हैं।

भगवान श्री ने सारे संसार के धर्मों एवं साधना पद्धति का अध्ययन किया है, मनन किया है, प्रयोग किया है, एक रसता प्राप्त की है, पी गये

हैं, जो स्वयं एक असंभव कृत्य है। अतः यह निर्भीकता पूर्वक यह कहा जा सकता है कि इनका साहित्य आस्तिकों के लिये प्राण, नास्तिकों के लिये अमृत, राजनीतिज्ञों के लिये जागृति, योगियों के लिये क्रान्तिकारक विचारकों के लिये अति आधुनिकतम सिद्धांत, भक्तों के लिये अमृत गंगा, साहित्यकारों के लिये अभूत पूर्व भंडार, तांत्रिकों के लिये नवीनतम शोध, रहस्यदर्शियों के लिये सुगम पथ, अन्धविश्वासियों के लिये शुद्ध वैज्ञानिक पथ, एवं मनोवैज्ञानिकों के लिये प्राण दाता, आर्त एवं जिज्ञासुओं के लिये शाश्वत की भाषा में सटीक वक्तव्य, नासमझों के लिये सरल भाषा का प्रयोग एवं अंधों को ज्योति ज्ञान है।

इतने बड़े महात्यागी एवं महाकरुणावान महापुरुष को भी गुजरात की सरकार नहीं समझ सकी और ६०० एकड़ जमीन देने का प्रलोभन दिया और 'गांधी जी' पर कोई वक्तव्य देने से रोकना चाहा। परन्तु उन्हें क्या पता था कि जमीन से लेकर गगन को भी पार करने वाली सम्पदा (शाश्वत) को भी कुछ समय के लिये त्याग करके आये हैं, और यह प्रथम ऐसा व्यक्ति है इस धरा पर जो विद्या में करोड़ों सरस्वति जैसा लगता है, तुलसी की ये पंक्तियां उल्लेखनीय हैं—

शारद कोटि अमित चतुराई,
विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।
धनद कोटि सत समधनवाना,
कोटि रुद्रशत समधनवाना॥

परन्तु शाश्वत को उपलब्ध ऐसा प्राणी भला कब तक चुप रह सकता तथा इतनी कठिनाई के बाद भी अस्वीकृति में उठा हाथ, समाजवाद से सावधान, संभोग से समाधि की ओर पुस्तकाकार हुईं, और अनेक लोग जो इनके समर्थक थे विरोधी हो गये। स्वार्थी लोग पारखी नहीं हो सकते। स्वार्थ सतत बाधक है।

संसार को दिव्य ज्योति का दर्शन कराने वाले इस मसीहा का हम वास्तविक लाभ ले पाते जब हम उनकी जीवन दृष्टि को समझ पाएं।

उस महाशून्य से लौटने की हिम्मत कोई ब्रम्हवेता नहीं जुटा सका क्योंकि यह मामला संभव नहीं था, इतना गहरा त्याग करना कोई मामूली बात नहीं थी ? अल्पकाल के लिये ही सही किसी महा करुणा वश स्थिति के कारण ही एक असंभव घटित हुआ है श्री रजनीश के माध्यम से।

इस बात को कोई भी सोच सकता है इतना बड़ा विद्वान विचारक आज तक देखने में नहीं आया जिसे शब्दों पर, भाव पर, आलोचना पर इतना बड़ा एकाधिकार हो, नियंत्रण हो।

परन्तु भविष्य में जो इतिहास निर्मित होगा इनकी पुस्तकें, साहित्य, सब शाश्वत होंगी, और हठी लोग आंसू बहायेंगे।

और यह भी संभव है कि ऐसे रहस्य दर्शी की चाभी संभालने वाला न मिले, पता नहीं इनकी चाभी संभालने वाला अद्वितीय पुरुष पैदा हुआ है या नहीं।

मैं इस लघु निर्झरणी से विराट को किन शब्दों में व्यक्त कर सकता हूं।

उस विराट को मेरे प्रणाम।

मनन जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक) मनन

वार्षिक मूल्य ६ रु. ☐ द्विवार्षिक मूल्य ११ रु. ☐ त्रिवार्षिक मूल्य १६ रु.

दुरंगे ४८ पृष्ठ

मनन का प्रत्येक अंक :

★ संत विचारकों व विद्वानों की वैज्ञानिक ढंग से लिखी आध्यात्मिक रचनाओं को प्रकाशित करता है। ★ वेदान्त और धर्म की गहन गुत्थियों को सुलझाने की सीधी और साफ विधियों को उजागर करता है। ★ मानव को उसकी दिव्य सत्ता की ओर उन्मुख करने वाला क्रांतिदूत। ★ पारिवारिक तथा खेल-कूद, ज्ञान-विज्ञान का अनूठा समन्वय।

● पांच ग्राहक एक साथ बनाकर भेजने वाले को मनन के १२ अंक मुफ्त।

सम्पर्क करें : तुलसी मानस प्रकाशन,

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई ४००-०१० फोन : ३९१८३१

रजनीश

शैशव से ही तू वीतराग,
प्रकृतिस्थ हुआ अंतरस्थ बना।
ज्ञान और विज्ञानों का फिर
महामहोपाध्याय बना।
अद्वैत सत्य के दर्शन का
आचार्य बना।
तेरा जश तेरी कीर्तिश्री फैली जब से
पूर्ण परम सिद्धार्थ बना।
पाखंड रूढ़ि को भस्म किया
प्रलयंकारी ग्रह शनी बना।
धर्म धनुष पर तूने ही
जाग्रति का शर संधान किया।
हे राम! तू ही अरिहंत बना।
मौलिश्री तले ज्योतिर्मान हुआ
भगवान बना।
हर हर बम बम की जगह आज
'हू-हू हू' का वर मन्त्र दिया
महादेव बना।
तिमिराच्छन्न युग-रजनी में
रजनीश बना।
ओ ज्ञान नीर-नीरज प्रभुवर
जन जन का अब तू ईश बना।
निज को तज अब है सर्व बना
है शून्य बना या पूर्ण बना।
सब कुछ बनकर भी कुछ न बना
जो है ही तू तू वही बना।

□ *अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'*
घंसोर, सिवनी (म. प्र.)

संग से—असंग में,
असंग से—तरंग में

आना अकेले, जाना अकेले,
फिर क्यों बोझ ये सारा।
रजनीश देते इशारा,
रजनीश देते इशारा ॥

इच्छाओं को हमने बनाया,
मृगतृष्णा - सी माया ।
पत्थर है, बाधा हैं अपनी
अब लो समझ में आया ॥
भूला जो इसमें, भटका ओ इसमें
चारों ओर पसारा ।
रजनीश देते इशारा ॥

शास्त्रों से जो अब भी बंधे हैं
हैं वही मरघट उनकी ।
भरते अपने को नियमों में
बातें सब जमघट की ॥
पल-पल मृत्यु, पल-पल जीवन
अस्थिर गंगा - धारा ।
रजनीश देते इशारा ॥

मत बांधो नियमों में मन को,
मन को छोड़ो — छोड़ो ।
पल-पल की बदलावट के संग
"अन्तस" रिस्ते जोड़ो ॥
संग से असंग में, असंग से तरंग में
हो गुरु - मंत्र हमारा ।
रजनीश देते इशारा ॥

□ *माधव जैन "अन्तस"*
बैतूल (म. प्र.)

भगवान के अमृत आलोक में :

समाधि साधना शिविर [मार्च] एवं बोधि-दिवस समारोह

☐ पूना आश्रम में जिस अमृत आनन्द की गंगा को भगवान श्री बहा रहे हैं, उसका रसास्वादन हमारे प्रेमी साधक भी कर सकें, इस हेतु प्रस्तुत हैं—स्वामी योग प्रताप भारती (कीर्तन मंडली) की लेखनी से अभिनव आनन्द रश्मियां। ☐

☐ *स्वामी योग प्रताप भारती*

इस बार शिविर में प्रवचन का शीर्षक था कस्तूरी कुंडल बसै जो भगवान कबीर की एक प्रसिद्ध साखी की सुप्रसिद्ध पंक्ति है। पूरे १० दिन भगवान ने भगवान कबीर के रूप में सतत् चेष्टा की कि किसी प्रकार हमारे ख्याल में आ सके—'कस्तूरी कुंडल...।'

१६ मार्च के प्रवचन में एक अनूठी रहस्यमयी बात भगवान द्वारा प्रकाशित हुई जिसे आज तक कभी किसी ने नहीं बताया जगत को। वे बोले "१० दिशायें तुम्हें ज्ञात हैं—मैं कहता एक ११वीं दिशा भी है।" पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण व उनके ४ कोण व ऊपर-नीचे ये दस दिशायें हैं। "मैं कहता हूं एक ११वीं दिशा भी है और वह है—भीतर। (भीतर की ओर—insideness) जैसे आगे, पीछे, दायें, बायें, इनके ४ कोण व ऊपर, नीचे वैसे ११वीं दिशा महा-रजनीश ने दी—भीतर।

१८ को प्रातः समय की अल्पता पर जोर देते हुए भगवान ने सजग किया—"...और अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी समझ है तो इन थोड़ी सी घड़ियों का उपयोग कर लेना। अन्यथा तुम सदियों-सदियों चिल्लाओगे। कुछ न होगा।" एक कविता जिसमें शब्दों का खेल उन्हें प्रीतिकर लगा था उन्होंने कही :—

बसंत आ गया।
बसंत आऽऽ, गया॥

दूसरी पंक्ति का अर्थ कि बसंत का आना कि बस जाना—आऽऽऽ,

गया आने जाने में कोई फासला नहीं।

उन्होंने कहा "गुरु का अर्थ होता है जो बस अब गया—गया। ज्यादा देर रुक नहीं सकेगा।"...

"मन न प्रेम में काम पड़ता है न प्रार्थना में।"

..."पूरा अखंड होकर कुछ भी कर लो वही तुम्हें इस कारागृह से बाहर ले जाने का द्वार हो जायगा।"

कबीर की लाइन 'सद्गुरु मारया बान' का अर्थ करते समय उन्होंने कहा 'सद्गुरु तो बाण मारता ही रहता है' मगर यहां जटिलता यह है कि तुम अगर राजी नहीं हो तो निशाना चूक जाएगा। बिना निशाने के भी मारूं और तुम राजी हो तो निशाना लक्ष्य पर पहुंच जाएगा—तुम ले लोगे।.. तुम श्रद्धा से भरे हो बाण लग जायेगा।

.. तुम सुनते हो व्याख्या के साथ जब कोई निर्व्याख्या सुनता है तो उसके पास कान हैं। तब कभी कोई एकाध—'कह कबीर गुरु ज्ञान से एकाध उबरा'।

हिरण्यकश्यप व प्रहलाद की कथा से नरसिंह रूप का वर्णन करते हुए भगवान ने उसे एक महत्वपूर्ण प्रतीक निरूपित किया—नरसिंह याने मुक्ति का उपाय।...गुरु नरसिंह है और गुरु तुम्हें मारेगा।

और उस क्षण तो लगा जैसे सब कुछ ठहर गया, चलती श्वांसें रुक गईं, कई सिसक-बिलख उठे जब करुणामय भगवान के परम उद्घोष कानों में पड़ रहे थे :

...ना कुछ के बदले सब कुछ देने को कोई तैयार है। सुन लो मेरी बात—जो तुम्हारे पास नहीं है वो मुझे दे दो और जो तुम्हारे पास है वो मैं तुम्हें दे दूंगा।...अगर तुम तैयार हो तो गुरु को आना पड़ेगा।

१९ की प्रातः भगवान कह रहे थे—दुख है परमात्मा की तरफ पीठ की अवस्था। सुख है परमात्मा की तरफ मुंह करके खड़े होना।... जिन्होंने सुख में खोजा उन्होंने पाया। जिन्होंने दुख में खोजा वे भटके।

...अंधेरा प्रकाश में नहीं आ सकता, रोशनी अंधेरे में जा सकती है। यह हो सकता है परमात्मा तुममें आ जाये जब तुम अंधेरे में हो लेकिन अंधेरे से भरी प्रार्थना परमात्मा में नहीं पहुंच सकती।

...बहुमूल्य बात है इसे याद रखना—जितने शांत तुम मेरे पास आओगे उतनी ही आसानी से काम हो सकेगा अन्यथा मेरी ऊर्जा और

तुम्हारी ऊर्जा दोनों व्यर्थ नष्ट होंगी। ...शांत हो जावो तब मेरे पास आवो क्योंकि मैं तुम्हें शांत अवस्था में ही किसी महान यात्रा पर भेज सकता हूं।

जब मन बड़ा प्रसन्न है तब क्लब मत भाग जावो, जब मन बड़ा प्रसन्न है होटल में मत जावो, रेडियो की बटन मत खोल लेना। तब भागना तुम मंदिर की तरफ। यह हीरा परमात्मा के चरणों में चढ़ा आवो। यह हीरा किसी वेश्या के चरणों में मत चढ़ा आना।.. सुख के साथ जोड़ लो प्रार्थना को तो इसी जन्म में यात्रा पूरी हो सकती है।

सुख, शांति स्वास्थ्य में ही प्रार्थना आवश्यक व सार्थक है यही सारा जोर था आज के पूरे पवचन में। 'दुख तुम्हें पसन्द नहीं परमात्मा को भी पसन्द नहीं।'—वे बोले।

भगवान बोले जा रहे थे—अगर तुम्हारी चाहें भी पूरी हो जायें तो तुम रोवोगे, पछतावोगे, छाती पीटोगे।

फिर उन्होंने मीडास की कथा कही जिसने वरदान प्राप्त कर लिया था कि उसके स्पर्शमात्र में आने वाली हर वस्तु स्वर्ण बन जाये और अंततः जो भूख व प्यास से तड़प-तड़प कर मरा क्योंकि जल भी उसके स्पर्श से जल न रहकर स्वर्ण हो जाता।... बोले—चाह अज्ञान से निकलेगी तो ऐसी ही होगी। मीडास की कथा अधिक लोगों की कथा है। नहीं तुम कुछ मांगना मत।

आज पुनः करुणासागर ने ग्यारहवीं दिशा की चर्चा की। कहते थे—मन दस दिशाओं में घूम सकता है। आठ दिशायें, एक ऊपर, एक नीचे। ग्यारहवीं तुम हो। ग्यारहवीं में उसकी कोई गति नहीं।

आज कहीं सज्जनता व संतत्व का विभेद करते हुए भगवान कह रहे थे—सज्जन का अर्थ : लखनवी। ...और उस समय तो हाल हंसी के फौवारों से भर गया जब उन्होंने लखनवी सज्जनता का नमूना पेश करते हुए एक कथा कही कि सुना है उन्होंने (पता नहीं सच या झूठ) लखनऊ में एक महिला गर्भवती थी। पैंतालीस साल उसके पेट से बच्चा पैदा ही न हुआ। आफत खड़ी हो गई। अन्ततः आपरेशन किया डाक्टरों ने तो दो बच्चे निकले। पैंतालीस साल उनके गर्भ से बाहर न आने का कुल कारण इतना था कि वे दोनों एक दूसरे को पहले आप, पहले आप कहने में लग गये थे। दोनों सज्जन थे।

और अन्तिम दिन भगवान ने चेतावनी दे ही दी—अगर सुन-सुन के समझ लिया कि जो मैं कहना चाहता था कह चुका तो तुम चूक गये। जो तुम सुन रहे हो वह भी वो नहीं है जो मैं कहना चाहता हूं। बड़ी दूर की प्रतिध्वनियां हैं।

और भी...मैं तुमसे बोल रहा हूं लेकिन मैं वही नहीं हूं जो खोजने निकला था। उसमें और मुझमें कोई तारतम्य नहीं।...वह तो एक छाया थी जो केवल अंधेरे में रह सकती थी। रोशनी में खो गई। भगवान ने साफ किया—धर्म की यात्रा रहस्य को हल करने की यात्रा नहीं है रहस्य को जीने की यात्रा है।

भगवान ने कहा—अनंत-अनंत मार्गों से तुम उससे जुड़े हो। तुम उससे अलग नहीं हो सकते। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहां हो ठीक वहीं उससे मिलन होगा, इन्च भर भी इधर-उधर जाने की जरूरत नहीं। दूकान पर बैठे-बैठे मिलन होगा। आफिस में बैठे-बैठे मिलन होगा। बगीचे में गड्ढा खोदते-खोदते मिलन होगा। गृहस्थी को संभालते-संभालते मिलन होगा।

...भेंट तैयार है, झोली फैला दे। कह दो परमात्मा से जैसा तू रखे वैसा मैं रहूंगा। इसको मैं संन्यासी कहता हूं। मैं संन्यासी कहता हूं उसको जो सर्वांग रूप से परमात्मा को स्वीकार कर लेते हैं—'राजी तेरी रजा में'। इस चित्त दशा का नाम मैं संन्यास कहता हूं।

रोज प्रवचन के अन्त में 'आज इतना ही' से पल भर पूर्व भगवान का रहस्यात्मक ढंग से 'कस्तूरी कुंडल बसै' कहना इतना प्यारा लगता कि..।

शिविरार्थियों की संख्या कोई ५०० से अधिक। 'देववाणी' (डिव्हाइन लेंग्वेज) नामक नयी ध्यान-विधि इसी शिविर से भगवान ने दी जिसे साधकों ने बहुत पसंद किया।

अन्नपूर्णा से, उसकी व्यवस्था व सेवा से सभी प्रसन्न थे। शिविर में आई हुई कुछ महिलाओं ने (कुछ पुरुषों ने भी) जो अथक सहयोग अन्नपूर्णा को प्रदान किया उसे यहां भुलाया नहीं जा सकता। श्रम व सेवा ही इनका ध्यान था।

आश्रम का रूप-रंग दिन-प्रतिदिन तेजी से बदलता जा रहा है।

भगवान प्रवचनों में, दर्शन में सब समय उतने ही ताजे व खिले हुए दिखाई देते थे जितना आज से वर्षों पूर्व वे थे।

कुल मिला कर मार्च ७५ का समाधि-साधना शिविर एक अनूठा धक्का देता हुआ लगा। जो परमात्मा में छलांग लेने को तत्पर हैं उनके लिए ये कीमती हैं क्षण।

प्रभु रजनीश संबोधि-दिवस : २१ मार्च

अरे ओ संसार के रहनेवालो—ओ जगत के चराचर वासियो—चले आवो पूना—चले आवो ... यहां परमात्मा अपनी समग्रता में खिला है। फिर मत कहना हमें खबर न हुई। हम समझ न सके।...नहीं, नहीं अभी इतनी देर नहीं। अभी भी समय है।

मन कहता है यहां पूना आश्रम में कोई ऐसी संचार-व्यवस्था हो जो पूरे जगत के कोने-कोने में सुनाई पड़ती हो और मैं यहां बैठा-बैठा यही एनाउन्समेंट प्रसारित करता रहूं। काश...

आज प्रभु का—प्यारे प्रीतम का संबोधि-दिवस है। पुण्यशाली २१ मार्च। आज १७ व ३३, कोरेगांव की छटा ही अलग थी—अलौकिक। सुबह से ही भीड़-भाड़, उत्सव-उल्लास परिलक्षित होने लगा था।

प्रभुश्री के पावन-आवास से सटे हुए नवनिर्मित प्रवचन-मंदिर का आज उद्घाटन हुआ। इसमें १००० लोग एक साथ बैठ सकते हैं। प्रातः ८ बजे प्रभुश्री ने संत-शिरोमणि लाओत्से के सूत्रों पर बोलना प्रारम्भ किया। बहुत लोगों को प्रवचन-मंदिर से बाहर लान में फैलकर बैठना शुरुआत ने ही गजब कर दिया। असीम करुणा-सागर बोले—गुरु और शिष्य के बीच जगत का सबसे बड़ा युद्ध है। उससे बड़ा कोई युद्ध नहीं। अगर शिष्य जीत जाये तो वही उसकी हार है। और अगर वह हार जाये तो वही उसकी जीत है।

हे परमात्मा! हम सब हार सकें अपने इस प्यारे गुरु से।

भगवान फिर बोले—जो सदा से मौजूद था उसे ही लाओत्से ने वाणी दी। जो सदा से मौजूद है मैं भी उसे ही वाणी दे रहा हूं। न लाओत्से का इसमें कुछ है न मेरा इसमें कुछ है।

धर्म और सम्प्रदाय का रहस्य उन्होंने खोला—सम्प्रदाय से कभी कोई धर्म तक नहीं पहुंचता मगर जो धर्म को पहुंच गया सभी संप्रदाय उसकी समझ में आ जाते है।

एक प्यारी घटना भगवान ने अपने बचपन की याद की—मैं छोटा

था तो मुझे ले जाया जाता था मंदिर । मैं पूछता था आपको पता हो पक्का तो मैं झुकने को राजी हूं । मुझे आप पर भरोसा है । मुझे तो लगता है तुम लोगों के पिता ने तुम्हें झुकाया तुम मुझे झुका रहे हो । मेरे पिता जी ईमानदार आदमी हैं । उन्होंने कहा—फिर हमीं झुकते हैं, तुम मत झुको । क्योंकि हमारी तो आदत हो गई है । तुम अपना संभालो, मगर इस तरह के कठिन सवाल मत उठावो ।

प्रभु ने कहा— लाओत्से की शिक्षाओं का सार, नवनीत प्रेम । प्रार्थना नहीं । क्योंकि प्रार्थना तो तुम अभी कर ही नहीं सकते । लाओत्से द्वारा बताये गये ३ खजानों पर प्रकाश डाल रहे थे भगवान । प्रेम का काफी विस्तार किया । दूसरा खजाना दो अतियों से बच जाना और तीसरा खजाना महत्वाकांक्षाओं को छोड़ देना है । उन्होंने कहा—संयमी आदमी में अति को कठोरता नहीं मध्य का माधुर्य होता है । . सभी बुद्ध जाने नहीं जाते । बहुत से बुद्ध तो चुपचाप चले जाते हैं । क्योंकि तुम उसे पहचान भी न पावोगे । क्योंकि वो एकदम आखीर में खड़ा था । पहचान के लिए भी तो पताकाएं चाहिए, शोर-गुल चाहिए ।

...तुमसे मैं यही कहता हूं तुम भिखारी...

भगवान आज २ घंटे १० मि० बोले । बहुत-बहुत हंसाया भी । तत्पश्चात् १०॥ बजे आश्रम के समीपवाली भूमि का पूजन, उद्घाटन मा योग लक्ष्मी के हाथों सम्पन्न हुआ । इसी भूमि पर ३,००० साधकों की क्षमता वाला विशाल मेडीटेशन हाल व भगवान श्री रजनीश आश्रम गेस्ट हाउस निर्मित होने वाला है । कीर्तन-भजन व जय-जयकार के नारों से सारा वायुमंडल अनुप्राणित हो रहा था ।

ठीक ११ बजे विशाल भोज का शुभारंभ हुआ । इस भोज का क्रम न्यूनाधिक रूपेण शाम ४ बजे तक चलता देखा गया । इसमें कोई २५०० लोगों ने भगवान का प्रसाद (भोजन) ग्रहण किया । प्रसाद का वर्णन क्या करना । वह सर्वथा वर्णन के बाहर है । हां, भोज की सारी व्यवस्था अति कुशल व सुरुचिपूर्ण थी । जय भगवान—जय रजनीश ।

भगवान का दर्शन रात्रि ७ से ९ का था । दर्शन के लिए ५ बजे से ही क्यू बन गई । ६ बजते-बजते चारों ओर गेरुवा ही गेरुवा दिखाई पड़ता था । ठीक ७ बजे नव-निर्मित

प्रवचन-मंदिर में करुणासागर भगवान अपने सिंहासन पर विराजमान थे। इससे पूर्व मा योग लक्ष्मी इस पुण्य-वेला में दो नव-प्रकाशित पुस्तकें—(१) शिव-सूत्र (२) दि वे आफ दि व्हाइट क्लाउड्स रिलीज कर चुकी थीं। भीड़ बेशुमार थी। दूर-दूर तक लोगों को लान में बैठे व पीछे खड़े रहना पड़ा।

मा योग तरु की मधुरिमा युक्त गुरु-गंभीर वाणी गूंज उठी—यदा यदा हि धर्मस्य... ...सर्व-धर्मान परित्यज्य... ...गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः ...श्री गुरुवे नमः।...गोविन्द बोलो हरि गोपाल बोलो.....।

दर्शन प्रारम्भ हो गया। लोगों की कतारें उठ-उठकर झूमती, गाती, नाचती, मस्ती के सागर में डूबती करुणामय के चरणारविन्दों में पहुंचने लगीं। बहुत निर्देशों के बावजूद भी लोग प्रभु के चरणों से लिपट ही जाते। बेचारे पागल प्रेमी। बहुत तो प्रभु के समक्ष ऐसे नृत्यलीन पहुंचते कि उन्हें संभालना पड़ता तो ही वे चरणों में झुक पाते। इधर चरणारविन्दों का प्रसाद बरसा, आप उठे, कदम बढ़ाये कि परम आराध्या मा योग विवेक के वरद्-हस्त से मीठे प्रसाद का पैके आपके हाथ में आ जाता।

सारे समय फिल्म कैमरे व फोटो-कैमरे सक्रिय थे। उनकी बाढ़ थी। फिल्मों के रूप में एक-एक पल को सुरक्षित करने की कोशिश जारी थी। कीर्तन नृत्य व आनन्द लहरियों की अथाह ऊर्जा बरस रही थी।

करुणासागर एक-एक दर्शनार्थी को देखकर जो अमृत, मुस्कान व हास्य के रूप में बरसा रहे थे उससे वहां उस समय सिर्फ जीवन था अपने शुद्ध परिवेश में।

शीघ्रता बरतने के बहुत निवेदन व घोषणाओं के बीच भी सबको प्रभु के चरण-वंदन का लाभ न मिल सका। कोई सौ से भी ऊपर लोग रह गये।

यह बताना मैं भूल गया कि आज नव-निर्मित प्रवचन-मंदिर नई दुलहिन की तरह सजा हुआ था। उसकी छटा, उसका रूप लावण्य, उसकी भव्यता वर्णन से परे है। यूं समूचा आश्रम व प्रभु-निवास सजावट में डूबा था।

आज की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी — गो-पालन योजना के अन्तर्गत आश्रम में प्रथम गऊ का अपने बछड़े सहित प्रवेश। आश्रम के मुख्य द्वार पर ही फूल-मालाओं व पूजन-अर्चन के साथ गऊ का स्वागत किया गया। शीघ्र ही ३ गायें और

आश्रम में पहुंच रही हैं। इस प्रकार आश्रम के जीवन में एक और नई विधा का सूत्रपात हुआ।

२२ मार्च की रात ८.३० बजे प्रवचन-मंदिर में ही भगवान श्री पर आधारित फिल्म दिखाई गई। प्रभु-श्री को भी इस शो में विराजना था। सबसे पीछे भी कुर्सी रखी न जा सकती थी। आगे रखना भी कष्ट-दायक होता। अतः सबके बीच में कुर्सी रखी गई। भगवान के आने के क्षण लोग खड़े हो गये थे। उस समय हंसी की फुहार उड़ चली – स्वयं करुणासागर भी हंस पड़े जब मंदिर में प्रवेश के साथ ही कुर्सी कहीं न दिखी। और भगवान बच्चों की भांति पूछ उठे—"लक्ष्मी मेरी कुर्सी कहां है ?"

दूसरी ओर भी जोरदार हंसी का सागर उस क्षण उमड़ा जब भगवान के दर्शनार्थ व स्वागतार्थ उत्सुक स्वामी आनन्द मैत्रेय के कन्धे पर सवार इंग्लैंड की ३ वर्षीय संन्यासिनी दीपा, भगवान को देखते ही कुछ इस भाव से, मुद्रा से 'भगवान-भगवान' कहकर आनन्द-विव्हल सी चीखने व हंसने लगी कि सबके साथ-साथ भगवान भी हंसने लगे। वह क्षण अवर्ण्य था।

भगवान लाओत्से पर नियमित बोले जा रहे हैं। प्रभु रजनीश की अनुकंपा अपार है। उन्हें हम सबके प्रणाम।

अन्तरतम् की गहराई से आने वाले काव्य के महासर्जक

स्वामी योग प्रीतम का

भगवान श्री रजनीश महाकाव्य

अब प्रकाशित होकर उपलब्ध है।

प्रकाशक :

अर्चना प्रकाशन

१ मेहरा हाउस, काला बाग,

अजमेर (राजस्थान)

प्रमुख उपलब्धि स्थान :

श्री रजनीश आश्रम

१७, कोरेगांव पार्क

पूना १ (महाराष्ट्र)

हे प्यारे
प्यासे
आ जाओ

●

आओ आओ आजाओ।
हे प्यारे प्यासे आजाओ।
यही प्रेम पुकार सतत है तुम्हें।
अनजान प्रभु प्यास ललकारती है तुम्हें ॥१॥
छोड़ो भी तो अर्थहीन जीवन व्यापार को।
रहने दो जाति पंथ 'औ' समाज संसर्ग को।
मर जाने दो ग्रथित विचार वैभव को।
देख लो केवल सन्ताप 'औ' उत्पीड़न को ॥२॥
हम देखते नहीं, सुनते भी नहीं।
हम ऐसे वैसे राहगीर नहीं।
जैसे कोल्हू का बैल भी नहीं।
और कोई जड़ता इतनी जड़ नहीं ॥३॥
एक परम परमात्मा का मन्दिर है।
यह महाराष्ट्र का मंगल सौभाग्य है।
प्रेम परमात्मा का आवास है यहां।
केवल ज्ञान ज्योति की मशाल है जहां ॥४॥
देख सकें तो हम केवल देख लें।
सुन सकें तो हम केवल सुन लें।
प्रेम कर सकें तो हम केवल प्रेम कर लें।
हम हो सकें तो केवल 'हम' ही होकर रह लें ॥५॥
न हम हैं गत मृत स्मृति जाल में।
न हम हैं कल्पनाओं की जंजाल में।
हम है यहां अभी और इसी क्षण में।
सहज समय की उत्स्फूर्त अन्तराल में ॥६॥
क्या गाया है गीत तूने ?
क्या छेड़ा है संगीत तूने।
हरदम हर धड़कन की सांस में।
आनन्द की लहर गूंजती हर प्रश्वास में ॥७॥

□

मा योग सुवर्णा

आरग

मिरज (महाराष्ट्र)

दर्शन योग शिविर

भगवान श्री रजनीश के दिव्य आशीष से प्रेरित

माधवपुर (घेड) व्हाया केशोद

(जूनागढ़ : जिला, गुजरात राज्य)

●

दिनांक : १९ मई ७५ से २५ मई तक

●

प्रवेश शुल्क : ध्यान, स्नेह-दर्शन

भोजन— मां अन्नपूर्णा की ओर से व्यवस्था की गई है।

सूचना—साधक को ता० १८।५।७५ की रात्रि पहले पहुंच जाना आवश्यक है। अपना बेडिंग साथ लाना जरूरी है।

पत्र — व्यवहार एवं जानकारी के लिए १० मई ७५ के पूर्व लिखें।

स्वामी आनन्द कृष्ण
c/o रजनीश सत्संग मंदिर,
रूपम साइकिल स्टोर्स,
हरीश टाकीज के सामने,
पोरबंदर (जूनागढ़ गुजरात)

तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : ३–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : ३–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७४ ६–००
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन : २–००
२१. चिंता और निश्चिंतता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात (आध्यात्मिक उपन्यास) ३–००
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. ज्ञान प्रेम १–००
३६. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ६–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

स्वामी वैराग्य अमृत कीर्त्तन मण्डली का उत्तर भारत में नव-सन्यास का प्रवर्त्तन

स्वामी वैराग्य अमृत के नेतृत्व में अनवरत भगवान श्री की दिव्य जीवन दृष्टि को जन-मानस तक पहुंचाया जा रहा है और जीवन तथा जगत् के बहुमूल्य सूत्र सामने आ रहे हैं। संन्यास की गरिमा मय दीप्ति से जन-सामान्य को परिचित कराया जा रहा है।

'युक्रांद' परिवार अपने संन्यासी मित्रों की इस अविरल साधना के प्रति शुभकामनाएं अर्पित करता है और प्रेम तथा आनन्द के भाव व्यक्त करता है।

संन्यासी मंडली :

(१) स्वामी वैराग्य अमृत [म० प्र०] (२) मा आनन्द विभूति [दिल्ली] (३) स्वामी योग प्रताप भारती [उ० प्र०] (४) स्वामी निर्मल भारती [महाराष्ट्र] (५) स्वामी विष्णु चैतन्य [पंजाब] (६) स्वामी प्रेम योगेश [म० प्र०] (७) स्वामी सत्यधर्म [गुजरात] (८) स्वामी आनन्दतीर्थ [म० प्र०] (९) स्वामी सत्यतीर्थ सरस्वती [पंजाब] (१०) स्वामी शिवानन्द भारती [हरियाणा]

कार्यक्रम :

★ चमोली	१, २, ३ मई ७५	श्री वैश्नव, जनरल मेनेजर, 'गढ़वाल मोटर ओनर्स यूनियन लिमिटेड, चमोली (उ. प्र.)
★ केदारनाथ, बद्रीनाथ	४, ५, ६, ७ मई ७५	स्वामी अमृत विजय, द्वारा : बदरीश स्टूडिओ, बद्रीनाथ, डि. चमोली
★ पौरी गढ़वाल	१०, ११ मई ७५	स्वामी हरिदास भारती
★ नाजीबाबाद	१४, १५ मई ७५	साधु अमृत चैतन्य (डा. प्रहलाददास गुप्ता) नजीबाबाद (उ. प्र.)
★ बिजनोर	१७,१८,१९ मई ७५	...
★ नगीना	२१, २२ मई ७५	...
★ मुरादाबाद	२४,२५,२६ मई ७५	स्वामी रामावतार भारती
★ रानीखेत	२८, २९ मई ७५	जनार्दन गुरू
★ अलमोड़ा	३१ मई, १,२ जून	सोभानसिंग, प्रेमालय, अलमोड़ा